जैनागमों में परमात्मवाद

लेखक—

जैनधर्मदिवाकर, साहित्यरत्न, जैनागमरत्नाकर,
आचार्यसम्राट परम श्रद्धेय

पूज्य श्री आत्माराम जी महाराज

प्रकाशक—

आचार्य श्री आत्माराम जैन प्रकाशनालय

जैनस्थानक, लुधियाना ।

प्राप्तिस्थान—
आचार्य श्री आत्माराम जैन प्रकाशनालय,
जैनस्थानक, लुधियाना

प्रथम प्रवेश

वीरसम्वत् २४८६
वि० स० २०१६
मूल्य आठ आना

मुद्रक—
राईज़ आर्ट इलक्ट्रिक प्रेस,
गली लालूमल, लुधियाना।

धन्यवाद

जैनागमो में परमात्मवाद' के प्रकाशन में समस्त व्यय करने की उदारता श्रीमती गौरा देवी जी कर रही हैं। माता श्री गौरा देवी जी यह प्रकाशन अपने पूज्य पतिदेव—

स्वर्गीय लाला नोहरियामल जी जैन

की पुण्यस्मृति में करवा रही हैं। लाला नोहरियामल जी धार्मिक विचारों के व्यक्ति थे। लाला जी की यह धार्मिक भावना जैनधर्मदिवाकर आचार्यसम्राट् पूज्य श्री आत्माराम जी महाराज जी के सुशिष्य युगद्रष्टा श्रद्धेय श्री स्वामी खजानचन्द्र जी महाराज के परमानुग्रह से प्राप्त हुई थी। श्रद्धेय महाराज जी की कृपा से ही लाला जी को जैनधर्म की उपलब्धि हुई थी। उन्हीं की कृपा से लाला जी सामायिक, नित्यनियम का सदा ध्यान रखा करते थे। धार्मिक सामाजिक और साहित्यिक कार्यों में अपने धन का सदा उपयोग करते रहते थे। श्री रामप्रसाद जी, श्री गोवर्धनदास जी, श्री केदारनाथ जी लाला जी के सुयोग्य पुत्र हैं। इन में जो धार्मिकता तथा सामाजिकता दृष्टिगोचर हो रही है, वह सब लाला जी के पुण्य प्रताप का ही मधुर फल है।

माता श्री गौरा देवी जी बड़ी उदार प्रकृति की देवी हैं। धर्मध्यान की इन को अच्छी लग्न है। दानपुण्य में सदा अपने धन का सदुपयोग करती रहती हैं। दो वर्ष हुए, योगनिष्ठ श्रद्धेय श्री स्वामी फूलचन्द्र जी महाराज द्वारा लिखे नयवाद का प्रकाशन इन्होंने ही करवाया था। आचार्यसम्राट् पूज्य श्री

आत्माराम जी महाराज द्वारा विनिर्मित 'जैनागमों में परमात्मवाद' का प्रकाशन भी आप ही करवा रही हैं। आप की इस उदारता के लिए मैं आप का धन्यवाद करता हूं। और आशा करता हूं कि भविष्य में भी आप इसी भांति साहित्यिक सत्कार्यों में अपने धन का सदुपयोग करती रहेंगी।

प्रार्थी—

मन्त्री—

आचार्य श्री आत्माराम जैन प्रकाशनालय,

जैनस्थानक, लुधियाना।

दिग्दर्शन

वदिक-परम्परा मे ईश्वर शब्द—

ईश्वर शब्द वदिक दशन का अपना एक पारिभाषिक शब्द है। वदिक दर्शन क अनुसार उस महाशक्ति का नाम ईश्वर है जो इस जगत का निर्मात्री है एव है सवव्यापक और नित्य है। वदिक दशन का विश्वास है कि ससार के कायचक्र को चलाने की बागडोर ईश्वर के हाथ म है ससार के समस्त स्पन्दन उसी की प्ररणा से हो रहे हैं।

वदिक दर्शन कहता है कि ईश्वर सवशक्तिमान है वह जो चाह कर सकता है।* कतव्य को अकर्तव्य और अकतव्य को कतव्य बना देना उस के बाए हाथ का काम है। सारा ससार उस की इच्छा का खेल है उसकी इच्छा के बिना एक पत्ता भी नही कम्पित हो सकता। ससार का उत्थान और पतन उसी के इशारे पर हो रहा है।

वदिक दशन की आस्था है कि अज्ञ होने के कारण जीव अपने सुख और दुख का स्वय स्वामी नही है †इस का स्वग या नरक जाना ईश्वर की इच्छा पर निभर है। मनुष्य कुछ नहा कर सकता। उस तो स्वय को ईश्वर क हाथो म सौप

* कतु मकतु मन्यथा कतु समथ ईश्वर ।

† अज्ञो जन्तुरनीशोऽयमात्मन सुखदुखयो ।
ईश्वरप्ररितो गच्छत्, स्वग वा श्वभ्रमेव वा ॥

(महाभारत)

देना चाहिए ईश्वर की कृपा ही उसकी बिगड़ी बना सकती है।

वैदिक दर्शन का कहना है कि भक्त ईश्वर की कितनी भक्ति कर ले उपासना करले कितना ही उसका गुणानुवाद करले, पर भक्त भक्त रहेगा और ईश्वर ईश्वर। भक्ति पूजा जप, तप त्याग वैराग्य आदि किसी भी प्रकार के अनुष्ठान के आराधना से भक्त ईश्वर नहीं बन सकता है। ईश्वर और भक्त के बीच में जो भेद-मूलक फौलादी दीवार खड़ी है वह कभी समाप्त नहीं हो सकती है।

इस के अलावा वैदिक दर्शन विश्वास रखता है कि संसार में जब अधर्म बढ़ जाता है धर्म की भावनाएं दुर्बल हो जाती हैं पाप सर्वत्र अपना शासन जमा लेता है तो पापियों का नाश करने के लिए तथा धर्म की स्थापना करने के लिए ईश्वर अवतार धारण करता है। मनुष्य पशु आदि किसी न किसी रूप में जन्म धारण करता है। यह वैदिक दर्शन के ईश्वर के स्वरूप का संक्षिप्त परिचय है।

जैन-परम्परा और ईश्वर शब्द--

जैन साहित्य का परिशीलन करने से पता चलता है कि उस में परमात्मा के अर्थ में ईश्वर शब्द का कहीं प्रयोग नहीं नहीं मिलता है। जैनदर्शन में परमात्मा के लिए सिद्ध बुद्ध अजर अमर सर्वज्ञ सप्रहीण निरंजन, मुक्तात्मा आदि शब्दों का व्यवहार मिलता है। जैन दर्शन की दृष्टि से ये समस्त शब्द पर्यायवाची हैं, सामान्यतया एक ही अर्थ के वाचक हैं। मुक्तात्मा के स्वरूप का विवेचन करते हुए भगवान महावीर ने श्री आचाराग सूत्र के प्रथम श्रुतस्कन्ध के पञ्चम अध्ययन के

छठे उद्देशक में फरमाया है—

मुक्त आत्मा का स्वरूप प्रतिपादन करने में समस्त शब्द हार मान जाते हैं वहां तक का प्रवेश नहीं होता है । बुद्धि उसे अवगाहन नहीं करती है । वह मुक्तात्मा प्रकाश-स्वरूप है । वह समग्र नाद का ज्ञाता है । वह न लम्बा है न छोटा है न गोल है (गेंद के आकार का नहीं है) न तिकोना है न चतुष्कोण है और न परिमण्डल है (वलय चूड़ी के आकार का नहीं है)—उस मुक्तात्मा की इन में से कोई आकृति नहीं है । वह न काला है न नीला है न लाल है न पीला है और न शुक्ल है—उसका कोई रूप नहीं है । वह न सुगन्ध वाला है न दुर्गन्ध वाला है—उस में कोई गंध नहीं है । वह न तीक्ष्ण (तीखा) है न कटुक है न कसायला है न खट्टा है और न मीठा है—उस में कोई रस नहीं है । वह न कर्कश है, न मृदु है न भारी है न हलका है न ठण्डा है न गरम है न स्निग्ध है और न रूक्ष है—उस में कोई स्पर्श नहीं है । वह मुक्तात्मा शरीर-रूप नहीं है । वह जन्म मरण के मार्ग को सर्वथा पार कर चुका है । वह अनासक्त है आसक्ति वाला नहीं है । वह न स्त्री रूप है न पुरुष रूप है न अन्यथा रूप है अर्थात् न नपुंसक रूप है और अवेद है-वेद रहित है । वह समस्त पदार्थों का सामान्य और विशेष रूप से ज्ञाता है । उसे समझाने के लिए कोई उपमा नहीं है वह अरूपी सत्ता है—रूप रहित सत्ता वाला है । उस अनिर्वचनीय का किसी वचन के द्वारा नहीं कहा जा सकता है । वह शब्द रूप गंध रस और स्पर्श स्वरूप नहीं है । शब्द के द्वारा वाच्य (जिस के लिए शब्द का प्रयोग किया जाता है) यही पदार्थ होते हैं परन्तु मुक्तात्मा इन में से कुछ नहीं है, अतः वह अवक्तव्य है ।

जैनदर्शन में मुक्तात्मा के अर्थ में ईश्वर शब्द का व्यवहार नहीं किया जाता है तथा जैनदर्शन वैदिकदर्शन द्वारा माने गए ईश्वर का ईश्वरत्व (जगत्कर्तृत्व आदि) भी स्वीकार नहीं करता है। जैनदर्शन का विश्वास है कि परमात्मा सत्यस्वरूप है, ज्ञानस्वरूप है, आनंदस्वरूप है वीतराग है, सर्वज्ञ है सर्वदर्शी है। परमात्मा का दृश्य या अदृश्य जगत में प्रत्यक्ष या परोक्ष कोई हस्तक्षेप नहीं है वह जगत का निर्माता नहीं है, भाग्य का विधाता नहीं है, कर्म फल का प्रदाता नहीं है तथा अवतार लेकर वह संसार में आता भी नहीं है।

जैनदर्शन कहता है कि व्यक्ति की अपेक्षा से परमात्मा एक नहीं है अनन्तजीव परमात्मपद प्राप्त कर चुके हैं। परमात्मा अनादि नहीं है। परमात्मा को अनादि न मानने का इतना ही अभिप्राय है कि जीव कर्मों का क्षय करने के अनन्तर ही परमात्मपद पाता है। परमात्मा एक जीव की दृष्टि से सादि अनन्त है अनादि काल से जीव मुक्त हो रहे हैं, और अनन्त काल तक जीव मुक्त होते रहेंगे इस दृष्टि से परमात्मा अनादि अनन्त भी है। परमात्मा आत्मप्रदेशों की दृष्टि से सर्वव्यापक नहीं है। उसके आत्मप्रदेश सीमित प्रदेश में अवस्थित हैं किन्तु उसके ज्ञान से सारा संसार आभासित हो रहा है इस दृष्टि से (ज्ञान की दृष्टि से) उसे सर्वव्यापक भी कह सकते हैं। संसार के धंधे में उसका कोई हस्तक्षेप नहीं है। जीव का कर्म करने में किसी सर्वथा स्वतन्त्र है परमात्मा जीव कर्म करने में किसी भी प्रकार की कोई प्रेरणा प्रदान नहीं करता है। उसे किसी कर्म के करने से वह निषिद्ध भी नहीं करता। जीव जो कर्म करता है, उसका फल जीव को स्वतः ही मिल जाता है। आत्म ...। से सम्बन्धित कर्म-परमाणु ही कर्म-कर्ता जीव को स्वयं अपना फल दे डालते हैं। मदिरा मदिरासेवी व्यक्ति पर जैसे

स्वय हा अपना प्रभाव डाल दती है वस हो वम-परमाणु जाव का स्वत ही अपन प्रभाव स प्रभावित कर डालत है। परमात्मा का उसके साथ प्रत्यक्ष या परोक्ष काई सम्बध नहो है। कमफल पाने क लिए जोव का परमात्मा क द्वार नहा खटखटाने पडत हैं। जाव सवथा स्वतत्र है किसो भो दृष्टि स वह परमात्मा के अधीन नही है। सक्षप म कह सकते हैं—

राम किसी को मारे नही, मार सो नही राम।
आप ही आप मर जायेगा, करके खोटा काम॥

जनदशन की आस्था है कि जीव अपन भाग्य का स्वय निमाता है, स्वग नरक मनुष्य की सद असद प्रवत्तिया का परिणाम हैं। अपनी नय्या का पार करने वाला भी जोव स्वय हा है और उस डुबोने वाला भी वह स्वय हा है। इस मे परमात्मा का काई सम्बध नही ह।

ऊपर की पक्तियो मे यह स्पष्ट हो गया है कि ईश्वर शब्द वदिक दशन का अपना एक पारिभाषिक शब्द है जनदशन म उस के लिए काई स्थान नही है। वदिकदशन म ईश्वर शब्द की जा परिभाषा व्यक्त की गइ है जैनदशन उस पर काई आस्था नही रखता है। जनदशन तो सर्वोत्तम और सवथा निष्कम दशा को प्राप्त आत्मा का ही परमात्मा या सिद्ध या बुद्ध आदि शब्दों क द्वारा प्रकट करता है। ऐसी निष्कम आत्मा को वह वदिक सम्मत ईश्वर क नाम से कभा व्यवहृत नहो करता है।

ईश्वर शब्द की व्यापकता—

ईश्वर शब्द की ऐतिहासिक अथविचारणा पर करत हुए मालूम होता है कि वदिकदशन क

इश्वर शब्द एक विशेष अर्थ मे रूढ था। उस समय जगत कर्तृत्व आदि विविध शक्तियो की धारक महाशक्ति को ही ईश्वर के नाम से व्यवहृत किया जाता था, किन्तु अन्तिम कुछ शताब्दियों से ईश्वर शब्द सामान्यतया परमात्मा का निर्देशक बन गया है। ईश्वर शब्द का उच्चारण करते ही मनुष्य को सामान्य रूप से परमात्मा का बोध होता है। आज ईश्वर के उच्चारण करने पर जगत की निर्मात्री, भाग्यविधात्री, कर्मफलप्रदात्री तथा अवतार ग्रहित्री किसी शक्ति विशेष का बोध नही होता है। ईश्वर एक है सर्वव्यापक है, नित्य है, आदि बातो का भी आज ईश्वर शब्द परिचायक नही रहा है। आज तो ईश्वर शब्द सीधा परमात्मा का निर्देश करवाता है। फिर चाहे कोई उसे किसी भी रूप मे स्वीकार करता हो। इश्वर शब्द सामान्य रूप से परमात्मा का निर्देशक होने के कारण ही आजसर्वप्रिय बन गया है। आत्मवादी सभी दर्शनो ने ईश्वर शब्द को अपना लिया है आत्मवादी सभी दर्शन ईश्वर को आदरास्पद स्वीकार करते है। जैनदर्शन जो सदा अनीश्वरवादी कहा जाता रहा है और जिस ने ईश्वर शब्द को कभी अपनाया ही नही है। तथापि आज उस के अनुयायी महर्ष ईश्वर का नाम लेते है अपने को ईश्वरवादी कहने मे जरा सकोच नही करते हैं। कारण स्पष्ट है कि ईश्वर शब्द आज वैदिकदर्शन का पारिभाषिक शब्द नही समझा जाता है। अब तो सामान्य रूप से वह परमात्मा का सिद्ध का बुद्ध का निर्देशक बन गया है। आज ईश्वर, परमात्मा सिद्ध बुद्ध गाड (God), खुदा आदि सभी शब्द समानार्थक समझे जाते है। मतान्तिक और साम्प्रदायिक दृष्टि से इन शब्दो के पीछे

किसी का कोई भी पारिभाषिक अभिमत रह रहा हो किन्तु जनसाधारण इन समस्त शब्दों से सामान्यतया परमात्मा का ही बोध प्राप्त करता है।

ईश्वर के तीन रूप—

ऊपर की पंक्तियों में स्पष्ट कर दिया गया है कि वैदिक दर्शन के योगतन्त्र में ईश्वर शब्द एक विशिष्ट और पारिभाषिक अर्थ का बोधक रहा है किन्तु अन्तिम शताब्दियों में इस का वह रूप परिवर्तित हो गया है। अब तो यह सामान्यतया परमात्मा का निर्देशक है। आज सभी आत्मवादी दर्शन ईश्वर को मानते हैं। कोई आत्मवादी दर्शन ईश्वर की सत्ता से इन्कार नहीं करता है। सभी इस सत्य को स्वीकार करते हैं।

सामान्य रूप से सभी आत्मवादी दर्शन ईश्वर को मानते हैं किन्तु सैद्धान्तिक और साम्प्रदायिक दृष्टि से ईश्वर-सम्बन्धी गुणों में थोड़ा थोड़ा मतभेद रखते हैं। इसी मतभेद को लेकर आज ईश्वर के सम्बन्ध में तीन विचार धाराएं उपलब्ध होती हैं। वे तीनों विचारधाराएं संक्षेप में इस प्रकार हैं—

१—ईश्वर एक है अनादि है सर्वव्यापक है, सच्चिदानन्द है घट घट का वासी है सर्वशक्तिमान है जगत का निर्माता है भाग्य का विधाता है कर्मफल का प्रदाता है। संसार में जो कुछ होता है वह सब ईश्वर के संकेत से होता है। ईश्वर पापियों का नाश करने के लिए तथा धार्मिक लोगों का उद्धार करने के लिए कभी न कभी, किसी न किसी रूप में संसार में जन्म लेता है बैकुण्ठ से नीचे उतरता है और अपनी लीला दिखा कर वापिस बैकुण्ठ धाम में जा विराजता है।

ईश्वर का यह एक रूप है, जिसे आज हमारे सनातनधर्मी

भाई मानते है। ईश्वर का दूसरा रूप नीचे की पंक्तियों मे पढिए—

२–ईश्वर एक है, अनादि है, सर्वव्यापक है, सच्चिदानन्द है, घट घट का ज्ञाता है सर्वशक्तिमान है, ससार का निर्माता है। जीव कर्म करने मे स्वतन्त्र है उस मे ईश्वर का कोई हस्तक्षेप नही है। जीव अच्छा या बुरा जैसा भी कर्म करना चाहे कर सकता है, यह उस की इच्छा की बात है, ईश्वर का उस पर कोई प्रतिबन्ध नही है किन्तु जीवो को उन के कर्मों का फल ईश्वर देता है। अपनी लीला दिखाने के लिए, पापियो का नाश करने के लिए और धर्मियो का उद्धार करने के लिए ईश्वर अवतार धारण नही करता है भगवान से मनुष्य या पशु के रूप मे जन्म नही लेता है।

ईश्वर का यह दूसरा रूप है, जिसे आज कल हमारे आर्य भाई मानते हैं। ईश्वर का तीसरा रूप भी समझ लीजिए—

३–ईश्वर एक ही नही है ईश्वर अनेक भी है, अनादि ही नही है सर्वव्यापक ही नही है, अनन्त शक्तिमान है घट घट का ज्ञाता है, द्रष्टा है जगत का निर्माता नही भाग्य का विधाता नही, कर्मफल का प्रदाता नही, अवतार लेकर ससार मे आता नही जीव कर्म करने मे स्वतन्त्र है जीवकृत कर्म के साथ ईश्वर का प्रत्यक्ष या परोक्ष कोई सम्बन्ध नही है। जीव की उन्नति या अवनति मे ईश्वर का कोई हस्तक्षेप नही है अहिंसा सयम और तप की त्रिवेणी मे विशुद्ध मनसा वाचा और कर्मणा गोता लगाने वाला व्यक्ति निष्कर्मता को प्राप्त करके ईश्वर बन जाता है। ईश्वर और जीव मे केवल कर्म गत अन्तर है। कर्म की दीवार यदि मध्य मे से उठा दी जाए तो जीव मे और ईश्वर मे

स्वरूप का कोई अंतर नहीं रहता है जीव ईश्वर-स्वरूप ही बन जाता है।

यह ईश्वर का तीसरा रूप है जिसे जन लोग स्वीकार करते हैं। जनों की ईश्वर-सम्बन्धी मान्यता के सम्बन्ध में पीछे भी वर्णन किया जा चुका है।

ईश्वर के सम्बन्ध में अन्य अनेकों रूप भी मिल जाते हैं। किन्तु मुख्य रूप में आज इन तीनों रूपों का ही अधिक प्रचार एवं प्रसार देखने में आता है। इसलिए यहां इन तीनों का ही संक्षिप्त परिचय कराया गया है।

जनागमों में परमात्मवाद—

आरंभ में कहा जा चुका है कि जनदर्शन में परमात्मा के अर्थ में ईश्वर शब्द का व्यवहार देखने नहीं आता है। परमात्मा के लिए जनदर्शन में सिद्ध बुद्ध आदि पदों का प्रयोग मिलता है। अब यहां कई एक प्रश्न हमारे सामने आते हैं कि जनदर्शन में सिद्ध बुद्ध आदि पदों का प्रयोग किस किस रूप में पाया जाता है? और कहां-कहां पाया जाता है? तथा जनदर्शन परमात्मा को एक कहता है या अनेक? सादि बतलाता है या अनादि? इन प्रश्नों का तथा इस प्रकार के अन्य प्रश्नों का समाधान प्राप्त करने के लिए हमें जनागम-सागर का मन्थन करना होगा। जनागमों का गंभीर चिन्तन मनन निदिध्यासन किए बिना उक्त प्रश्नों का समाधान प्राप्त होना कठिन है। पर यह काम बच्चों का खेल नहीं है। इस के लिए प्रतिभा चाहिए और जनागमों का सम्यक्तया परिज्ञान होना चाहिए। जिस को जनागमों का पर्याप्त बोध हो उनके पूर्वापर सम्बन्धों की पूर्णतया जानकारी हो तथा उन में निराबाध गति से जो

विहरण कर सकता हो, ऐसा कोई आगम मर्मज्ञ महापुरुष ही इन प्रश्नों का समाधान कर सकता है। जनसाधारण के वश का यह काम नहीं है।

जैन समाज में आगममहारथी महा पुरुषों की कमी नहीं है। जैनागमों के मर्म को समझने वाले तथा उस के महासागर के तल का स्पर्श करने वाले समाज में आज भी अनेकों पूज्य मुनिराज हैं। किन्तु मालूम होता है कि इस सम्बन्ध में उन्होंने कोई ध्यान नहीं दिया। यही कारण है कि आज तक किसी ऐसी पुस्तक की रचना नहीं हो सकी है जिस में परमात्मसम्बन्धी आगमपाठों का सकलन किया गया हो। बस ऐसी पुस्तक होनी अवश्य चाहिए। जैनागमों में जहाँ-जहाँ परमात्मा का वर्णन आता है, जिन शब्दों तथा जिस रूप में वह वर्णन किया गया है उस सब का सकलन किसी पुस्तक में अवश्य हो जाना चाहिए। तभी जैनागमों में वर्णित परमात्म स्वरूप का जनसाधारण को बोध प्राप्त हो सकता है।

आगमों में यत्र-तत्र आए हुए परमात्मसम्बन्धी पाठों का सकलन होना चाहिए ऐसा सकल्प तो जिज्ञासु पाठकों के हृदयों में वर्षों से चक्र लगा रहा है किन्तु उसे पूरा करने का किसी ने प्रयास नहीं किया। मुझे हार्दिक हर्ष होता है यह बताते हुए कि हमारे श्रद्धेय आचार्य सम्राट् श्री ने इस दिशा में प्रयत्न करके उस सकल्प को आज पूरा कर दिया है। आचार्य श्री ने अपने अनवरत स्वाध्याय के बल पर आगमों से प्रायः वे सभी पाठ सकलित कर लिये हैं जिन में परमात्मवाद को लेकर कुछ न कुछ कहा गया है उसके स्वरूप को लेकर चिन्तन किया गया है। उन पाठों का सकलित रूप ही आज हमारे सामने

'जनागमा म परमात्मवाद यह पुस्तिका ह। इस पुस्तिका म परमात्मसम्बन्धी प्राय सभी पाठा को सग्रहीत कर लिया गया है।

जनागमा म परमात्मवाद' मे सवप्रथम शास्त्रीय पाठ ह फिर टिप्पणी म उसकी सस्कृत च्छाया है। तदनन्तर उस पाठ की सस्कृत-व्याख्या है। तत्पश्चात उसका हिन्दी म भावाथ है। मूलपाठ देखन वाल को इस मे मूलपाठ मिलेगा। जा सस्कृत भाषा के विद्वान मूलपाठ के गभीर हार्द का सस्कृत भाषा मे जानने की रुचि रखते है उनके लिए मूलपाठ की सस्कृत-व्याख्या का इसमे सयोजन किया गया है। जो हिन्दी म उसे समझना चाहते हैं उन के लिए हिन्दी भाषा मे उन पाठो का अनुवाद कर दिया गया है। इस प्रकार इस पुस्तिका को प्रत्येक दृष्टि से उपयोगी और लोकप्रिय बनान का स्तुत्य प्रयास किया गया है। इस का सभी श्रेय हमारे श्रद्धेय गुरुदेव जन धर्म दिवाकर आचार्य-सम्राट पूज्य श्री आत्माराम जी महाराज का ही है। इन्हीं के अनवरत परिश्रम का यह सुफल है। शारीरिक स्वास्थ्य ठीक न रहते हुए भी आचार्य श्री ने साहित्य-सेवा म अपना यह योगदान दिया है इस के लिए साहित्यजगत आचार्य श्री का सदा के लिए ऋणी रहेगा।

ईश्वर सम्बन्धी हिन्दी साहित्य म इस पुस्तक की अपनी विशिष्ट उपयोगिता है। जो व्यक्ति जानना चाहते है कि जनागमा म परमात्मा के सम्बन्ध म कसा निरूपण किया गया है? और किन किन शब्दों म किया गया है? उनको इस पुस्तक म पर्याप्त सामग्री मिलेगी। और जो लोग यह कहते चले रहे हैं कि जनदर्शन परमात्मा की सत्ता से इन्कार

या उसके सम्बन्ध में सर्वथा मौन है उन लोगों को भी इस पुस्तक में समुचित समाधान मिल जायगा इस पुस्तक के अध्ययन से उन को पता चल जायगा कि जैनधर्म परमात्मा की सत्ता को महत्व स्वीकार करता है और प्रामाणिकता के साथ परमात्मा के स्वरूप का प्रतिपादन करता है। इस तरह यह पुस्तक साहित्य जगत में महान उपयोगी, हितावह प्रमाणित होगी यह मैं दृढ़ता के साथ कह सकता हूं।

परमश्रद्धेय आचार्य सम्राट श्री के हम आभारी हैं जो शारीरिक दुर्बलता के रहते हुए भी साहित्य-सेवा के पुनीत कार्य को चालू रख रहे हैं। अबतक आचार्य श्री लगभग ६० पुस्तकें लिख चुके हैं। नेत्र ज्योति की मंदता तथा एक कम अस्सी वर्षों की वयोवृद्ध अवस्था हो जाने पर आज भी श्रद्धेय आचार्य देव इस पुनीत साहित्य-कार्य से विश्राम नही ले रहे हैं। अवसर निकालकर इस कार्य को करते ही रहते है। प्रस्तुत पुस्तिका भी आचार्य-देव की इसी लग्न का सुपरिणाम है। आचार्य-देव की इस साहित्यप्रियता कृपालुता और दयालुता के लिए जितना भी उनका आभार प्रकट किया जाय उतना ही कम है।

जैनस्थानक लुधियाना
कार्तिक शुक्ला १५ २०१६

—ज्ञानमुनि

जैनागमों में परमात्मवाद

* मङ्गलाचरणम् *

अमूर्तस्य चिदानन्दरूपस्य परमात्मनः ।
निरञ्जनस्य सिद्धस्य ध्यानं स्याद्रूपवर्जितम् ॥
इत्यजस्रं स्मरन् योगी तत्स्वरूपावलम्बनः ।
तन्मयत्वमवाप्नोति, ग्राह्यग्राहकवर्जितम् ॥
अनन्यशरणीभूय स तस्मिन् लीयते तथा ।
ध्यातृ ध्यानोभयाभावे ध्येयेनैक्यं यथा व्रजेत् ॥
सोऽयं समरसीभावः तदेकीकरणं मतम् ।
आत्मा यदपृथक्त्वेन, लीयते परमात्मनि ॥
अलक्ष्यं लक्ष्य-सम्बन्धात् स्थूलात्सूक्ष्मं विचिन्तयेत् ।
सालम्बाच्च निरालम्बं तत्त्ववित् तत्त्वमञ्जसा ॥
एवं चतुर्विधध्यानामृतमग्नं मुनेर्मनः ।
साक्षात्कृतजगत्तत्त्वं विधत्ते शुद्धिमात्मनः ॥
— योगशास्त्र प्रकाश १०

परमात्मा का स्वरूप

मूल पाठ

*सव्वे सरा णियट्टंति, तक्का जत्थ न विज्जइ, मइ तत्थ न गाहिया, ओए, अप्पइट्ठाणस्स खेयन्ने, से न

---

* सर्वे स्वरा निवर्तन्ते तर्को यत्र न विद्यते मतिस्तत्र न ग्राहिका ओजः अप्रतिष्ठानस्य खेदज्ञः स न दीर्घो न, ह्रस्वो न न

दीहे, न हस्से, न वट्टे, न तंसे, न चउरंसे, न परिमंडले, न किण्हे, न नीले, न लोहिए न हालिद्दे, न सुक्किल्ले, न सुरभिगंधे, न दुरभिगंधे, न तित्ते, न कडुए, न कसाए, न अंबिले, न महुरे, न कक्खडे, न मउए, न गरुए, न लहुए, न सीए, न उण्हे, न निद्धे, न लुक्खे, न काऊ, न रुहे, न संगे, न इत्थी, न पुरिसे, न अन्नहा, परिन्ने, सन्ने, उवमा न विज्जए, अरूवी सत्ता, अपयस्स पयं नत्थि ।

से न सद्दे, न रूवे, न गंधे, न रसे, न फासे ।

—आचारांगसूत्र प्रथमश्रुतस्कंध अध्याय ५ उद्देश ६ ।

सस्कृत–व्याख्या

'सर्वे' निरवशेषा 'स्वरा' ध्वनयस्तस्मान्निवर्तन्ते तद् वाच्य वाचक-सम्बन्ध न प्रवर्तन्ते तथाहि—शब्दा प्रवर्तमाना रूप रस-ग ध—स्पर्शानामन्यतमे विशेष सकेत-काल-गृहीते तत्तुल्ये वा प्रवर्तेरन् न चात्र शब्दादिना प्रवृत्तिनिमित्तमस्ति अत शब्दानभिधेया मोक्षावस्थेति । न

त्र्यस्रो न चतुरस्रो, न परिमण्डलो न कृष्णो न नीलो न लोहितो, न हारिद्रो न शुक्लो न सुरभिगन्धो, न दुरभिगन्धो न तिक्तो न कटुको न कषायो, नाम्लो न मधुरो, न कर्कशो न मृदु, न गुरु न लघु न शीतो नोष्णो, न स्निग्धो न रूक्षो न कायवान् न रुह न सङ्ग न स्त्री न पुरुष नान्यथा परिज्ञ सज्ञ, उपमा न विद्यते अरूपिणी सत्ता अपदस्य पद नास्ति ।

स न शब्द, न रूप न गन्ध न रस न स्पर्श ।

केवल शब्दानभिधया, उन्न श्णीयापि न समवतीर्याह्—सभवत्पदार्थ-विनपास्तित्वाध्यवसाय ऊहस्तक एवमेव चतस्स्यात स च यत्र न विद्यते तत घञ्नाना कुत प्रवत्ति स्यात किमिति तत्र तर्काभाव इति चदाह् मनन मति—मनसो व्यापार पदार्थचिन्ता औत्पत्तिक्याद्यिका चतुर्विधापि मतिस्तत्र न ग्राहिका मोनावस्थाया सकल—विकल्पातीतत्वात्, तत्र च मोने कर्मानसर्म वतस्य गमनमाहोस्विन्निष्कर्मण ?, न तत्र कमसम न्वितस्य गमनमस्तीत्येतद्दर्शयितुमाह— ओज ' एवाय— मलकलकाकरहित किंच—न विद्यते प्रतिष्ठानमौदारिक-शरीरा कमणो वा यत्र साऽप्रतिष्ठाणो मोक्षस्तस्य खेदज्ञो ' निपुणो यदि वा मप्रतिष्ठा-नो नरकस्तत्र स्थित्यान्परिज्ञानतया खेज्ञो लोक-नाडि-पयन्तपरिज्ञाना वदनेन च समस्तलोकक्षदर्शता मावदिता भवति । सवस्वरनिरतन च येनाभिप्रायेणोक्तवास्तमभिप्रायमाविष्कुर्वनाह—'स'परमपदमध्यासी लोकान्त ग्रोभागषडभागक्षत्रावस्थानोऽनन्तज्ञानदर्शनोपयुक्ता सस्थानमाश्रित्य न दीर्घो न ह्रस्वो न वृत्तो न त्र्यस्रो न चतुरस्रो न परिमडलो वर्णमाश्रित्य न कृष्णो न नीलो न लोहितो न हारिद्रो न शुक्लो, गन्धमाश्रित्य—न सुरभिगन्धो,न दुरभिगन्धो,रसमाश्रित्य—न तिक्तो न कटुको न कषायो नाम्ल न मधुर स्पर्शमाश्रित्य—न ककशो न मृदु न लघु न गुरु ,न शीतो नोष्णो न स्निग्धो न रूक्षो, 'न काउ' इत्यनन लश्या गृहीता शर्म वा न कायवान् यथा वेदान्तवादिनाम्—एक एव मुक्तात्मा तत्कायमपरे क्षीणक्लेशा मनुप्रविशन्ति आदित्य-रश्मय इवांशुमन्तमिति, तथा न रुह बीज—जन्मनि प्रादुर्भवे "च"—रोहतीति रुह न रुहोऽरुह कमबीजाभावादपु नर्भावीत्यय न पुनयथा शाक्याना दशन—निकारतो मुक्तात्मनोऽपि पुनर्भवोपादानमिति उक्तं च—

दग्धेंधन पुनरुपैति भव प्रमथ्य,
निर्वाणमप्यनवधारित-भीरुनिष्ठम् ।

मुक्त स्यय वतभयदत पराथगूर
स्वच्छासन प्रतिहतेऽपिह माहराज्यम् ॥१॥

तथा च न विशं गतोऽमूर्त्तत्वात् स न तथा, तथा न स्त्री न पुरुषः, न्ययेति—न नपुसकः केवल सर्वेरात्मप्रदेशैः परि समन्तात् विजयना जानातीति-परिज्ञ तथा सामायत सम्यग् जानाति—पश्यति इति यथा ज्ञानदर्शनयुक्त इत्यथ । यदि ताय स्वरूपतो न ज्ञायते, मुक्तात्मा तथा युपमाद्वारेणादित्य मनिरिव ज्ञायत एवति चेत् त न यत उपनीयते सादृश्यात् परिच्छिद्यते यया सोपमा तुल्यता सा मुक्तात्मन रमन्तानमुखप्रोर्वा न विद्यते लोकातिगत्वात्तयां तुत एतदिति चेत्त्राह—तेषा मुक्तात्मनां या सत्ता सा ग्रहूपिणी ग्ररूपित्व च दीर्घादिप्रतिषधन प्रतिपा दितमेव । किं च न विद्यत पदम्—ग्रवस्थाविशषो यस्य सोऽपद तस्य पद्यते गम्यते यनाथस्तत्पदम्—ग्रभिधान तच्च नास्ति न विद्यते वा च्यविशषाभावात् तथाहि—यो भिधीयते स स रूप गन्ध रसस्पर्शादितर विशषणाभिधीयते तस्य च तदभाव इत्येतद्दर्शयितुमाह—यदि वा दीघ त्वादिना रूपादिविशष निराकरण कृतम् इह तु त सामा य निराकरण कर्तुकामाह—स मुक्तात्मा न शब्दरूप न रूपात्मा न गन्ध न रस, न स्पर्श ।

हिन्दी भावार्थ—

मुक्तात्मा का स्वरूप बताने के लिए कोई भी शब्द समथ नहीं है। तक की वहा गति नहीं होती है। बुद्धि वहा तक जा नहीं सकती है। उसकी कल्पना नहीं की जा सकती है। वह मुक्तात्मा सकल कर्म रहित सम्पूर्ण ज्ञानमय दशा म विराजमान है। वह न लम्बा है न छोटा है न गोल है न त्रिकोण है, न चौरस है न मण्डलाकार है न काला है न नीला है न लाल है। वह पीला और सफेद भी नहीं है। सुगन्ध और दुगन्ध

वाला नहीं है। तीक्ष्ण और कटुक नहीं है। कसैला खट्टा और मीठा नहीं है। वह न कठोर है न सुकुमार है न हल्का है न भारी है न शीत है न उष्ण है न स्निग्ध है न रूक्ष है न शरीरधारी है न पुनर्जन्मा है न आसक्त है न स्त्री है न पुरुष है न नपुंसक है। वह ज्ञाता है परिज्ञाता है उसकी उपमा नहीं है। वह अरूपी है अवर्णनीय है शब्दों द्वारा उसका वर्णन नहीं किया जा सकता है।

मुक्तात्मा शब्द रूप रस गंध और स्पर्श स्वरूप भी नहीं है।

मूल पाठ

* एक्कतीस सिद्धाइगुणा पण्णत्ता, तंजहा—खीणे आभिणिबोहिय-णाणावरणे, खीणे सुयणाणावरणे, खीणे ओहियणाणावरण, खीणे मणपज्जवणाणावरण

---

* एकत्रिंशत् सिद्धादिगुणा प्रज्ञप्ताः तद्यथा क्षीणमाभिनिबोधिक ज्ञानावरण क्षीण श्रुतज्ञानावरण क्षीणमवधिज्ञानावरणं क्षीणं मनःपर्यवज्ञानावरण क्षीण केवलज्ञानावरण क्षीणं चक्षुर्दर्शनावरण क्षीणमचक्षुर्दर्शनावरण क्षीणमवधिदर्शनावरण क्षीण केवलदर्शनावरण क्षीणा निद्रा क्षीणा निद्रानिद्रा क्षीणा प्रचला क्षीणा प्रचलाप्रचला क्षीणा स्त्यानर्द्धि, क्षीण सातावेदनीयं, क्षीणमसातावेदनीय क्षीण दर्शनमोहनीय, क्षीण चारित्रमोहनीय, क्षीण नरयिकायुष्क, क्षीण तिर्यगायुष्क क्षीण मनुष्यायुष्कं क्षीण देवायुष्कं, क्षीणमुच्चगोत्र क्षीणं नीचगोत्र क्षीणं शुभनाम क्षीणमशुभनाम क्षीणो दानान्तराय क्षीणो लाभान्तराय क्षीणो भोगान्तराय क्षीण उपभोगान्तराय क्षीणो वीर्यान्तराय)

खीणे केवलणाणावरणे, खीणे चक्खुदंसणावरणे, खीणे अचक्खुदसणावरणे, क्षीणे ओहिदसणावरणे, खीणे केवलदसणावरणे, खीणे णिद्दा खीणे निद्दानिद्दा, खीणे पयला, खीणे पयलापयला, खीणे थीणद्धी, खीणे सायावेयणिज्जे, खीणे असायावेयणिज्जे, खीणे दसण-मोहणिज्जे खीणे चरित्तमोहणिज्जे, खीणे नेरइ-आउए, खीणे तिरिआउए, खीणे मणुस्साउए, खीणे देवाउए, खीणे उच्चागोए, खीणे निच्चागोए, खीणे सुभणामे, खीणे असुभणामे, खीणे दाणंतराए खीणे लाभंतराए, खीणे भोगंतराए, खीणे उवभोगंतराए खीणे वीरियंतराए।

—समवायांग सूत्र समवाय ३१

हिन्दी भावार्थ—

सिद्धों के ३१ गुण माने जाते है। जैसे कि—

१ आभिनिबोधिक ज्ञानावरण मतिज्ञानावरण कर्म का क्षय।
२ श्रुतज्ञानावरण कर्म का क्षय।
३ अवधि ज्ञानावरण कर्म का क्षय।
४ मन पर्यव ज्ञानावरण कर्म का क्षय।
५ केवल ज्ञानावरण कर्म का क्षय।
६ चक्षुदर्शनावरण कर्म का क्षय।
७ अचक्षुदर्शनावरण कर्म का क्षय।
८ अवधि दर्शनावरण कर्म का क्षय।
केवल दर्शनावरण कर्म का क्षय।

१० निद्रा का क्षय ।
११ निद्रानिद्रा का क्षय ।
१२ प्रचला का क्षय
१३ प्रचला प्रचला का क्षय ।
१४ स्त्यानर्द्धि का क्षय ।
१५ सातावेदनीय कर्म का क्षय ।
१६ असातावेदनीय कर्म का क्षय ।
१७ दर्शनमोहनीय कर्म का क्षय ।
१८ चारित्रमोहनीय कर्म का क्षय ।
१९ नरकायु का क्षय ।
२० तिर्यञ्चायु का क्षय ।
२१ मनुष्यायु का क्षय ।
२२ देवायु का क्षय ।
२३ उच्च गोत्र कर्म का क्षय ।
२४ नीच गोत्र कर्म का क्षय ।
२५ शुभ नाम कर्म का क्षय ।
२६ अशुभ नाम कर्म का क्षय ।
२७ दानान्तराय कर्म का क्षय ।
२८ लाभान्तराय कर्म का क्षय ।
२९ भोगान्तराय कर्म का क्षय ।
३० उपभोगान्तराय कर्म का क्षय ।
३१ वीर्यान्तराय कर्म का क्षय ।

मूल पाठ

* कहिं पडिहया सिद्धा ? कहिं सिद्धा पइट्ठिया ?
कहिं बोंदि चइत्ता ण, कत्थ गतूण सिज्झइ ? ॥१॥

संस्कृत-व्याख्या

अथ प्रश्नोत्तर द्वारेण सिद्धानामेव वक्तव्यतामाह—कहिं इत्यादि श्लोकद्वय, क्व प्रतिहता —क्व प्रस्खलिता सिद्धा मुक्ता ? तथा क्व सिद्धा प्रतिष्ठिता-व्यवस्थिता इत्यर्थ ? तथा क्व बोन्दि शरीर त्यक्त्वा? तथा क्व गत्वा सिज्झइ त्ति प्राकृतत्वात् । स तु चाइत्ति दुक्खइ इत्यादिवत् सिध्यतीति व्याख्येयमिति ।

हिन्दी-भावार्थ

सिद्ध कहा पर प्रतिहत होते हैं ? अर्थात् निष्कर्म आत्मा ऊपर की ओर गमन करती हुई कहा पर जा कर रुकती है ?
सिद्ध कहा पर जा कर ठहरते हैं ?
सिद्ध कहा पर शरीर छोडते हैं और कहा पर जा कर सिद्धावस्था को प्राप्त करते है ?

मूल पाठ

† अलोगे पडिहया सिद्धा, लोयग्गे य पडिट्ठिया ।
इह बोंदि चइत्ता ण, तत्थ गतूण सिज्झइ ॥२॥

---

* कुत्र प्रतिहता सिद्धा ? कुत्र सिद्धा प्रतिष्ठिता ?
कुत्र बोन्दि (शरीर) च त्यक्त्वा कुत्र गत्वा सिध्यन्ति ?

† अलोके प्रतिहता सिद्धा, लोकाग्र च प्रतिष्ठिता ।
इह बोन्दि (शरीर) त्यक्त्वा तत्र गत्वा सिध्यन्ति ॥

संस्कृत-व्याख्या

अलोके अलोकाकाशास्तिकाये प्रतिहता — स्खलिता सिद्धा — मुक्ता प्रतिस्खलन चेहानन्तर्यवर्तिमात्र तथा लोकाग्रे च पञ्चास्तिकायात्मक लोकमूर्धनि च प्रतिष्ठिता अपुनरागत्या व्यवस्थिता इत्यर्थ, तथा इह मनुष्यक्षेत्रे बोन्दि—तनु परित्यज्य तत्रेति लोकाग्रे गत्वा सिज्झइ त्ति *सिध्यन्ति निष्ठितार्था भवन्ति।*

हिन्दी-भावार्थ

सिद्ध अलोक से प्रतिहत होते हैं, और लोक के अग्रभाग पर जा कर ठहरते हैं।

मनुष्य क्षेत्र मे शरीर छोडते हैं और लोकाग्रभाग पर सिद्धावस्था को प्राप्त होते है।

मूल पाठ

* जं संठाणं इह भवे, चयंतस्स चरिमसमयम्मि।

आसी य पएसघणं, तं संठाणं तहिं तस्स ॥३॥

संस्कृत-व्याख्या

निष्क्व—जं संठाणं गाहा व्यक्ता नवर प्रदेशघनमिति विभागेन रन्ध्रपूरणादिति हि ति सिद्धि क्षेत्रे तस्स त्ति सिद्धस्येति।

हिन्दी-भावार्थ

सिद्ध आत्मा का इस मनुष्य क्षेत्र में जो संस्थान (आकार) *होता है अन्तिम समय में वह छोटा रह जाता है। छोटा हो*

---

* यत्संस्थानमिह भवे त्यजत चरमसमये।

आसीच्च प्रदेशघनं तत्संस्थानं तत्र तस्य ॥

जाने का कारण यह है कि शरीर में आत्मप्रदेशों का जो फैलाव होता है शरीर से बाहिर निकलने पर वह उस रूप में नहीं रहा पाता है तीसरा भाग उस में कम पड़ जाता है। तीसरा भाग कम हो जाने पर सिद्ध जीव के आत्म प्रदेशों का जो आकार होता है, वही आकार मोक्षावस्था में उस सिद्ध जीव का बना रहता है।

मूल पाठ

* दीहं वा हस्सं वा जं चरिमभवे हवेज्ज संठाणं ।
तत्तो तिभागहीणा, सिद्धाणोगाहणा भणिया ॥४॥

संस्कृत-व्याख्या

तथा चाह— दीर्घं वा यत्, दीर्घं वा पञ्च धनु शतमानं ह्रस्वं वा हस्तद्वयमानं वा यत् मध्यमं वा यच्चरमभवे भवेत्संस्थानं ततः तस्मात् संस्थानात् त्रिभागहीना त्रिभागेन सुषिरपूरणात् सिद्धानामवगाहना— अवगाहन्ते अस्यामवस्थायामिति अवगाहना स्वावस्थानमिति भावः भणिता उक्ता जिनैरिति।

हिन्दी-भावार्थ

चरमशरीरी जीव (मुक्त) का दीर्घ-बड़ा या ह्रस्व-छोटा जो संस्थान होता है उस में से तीसरा भाग कम कर देने पर जो शेष रहता है वह संस्थान सिद्ध जीवों की अवगाहना (आकार) होती है। भाव यह है कि चरमशरीरी जीव के शरीर में नासिका-छिद्र, कर्ण-रन्ध्र आदि जो आत्मप्रदेशों से

---

* दीर्घं वा ह्रस्वं वा यत् चरमभवे भवेत् संस्थानम् ।
ततः त्रिभागहीना सिद्धानामवगाहना भणिता ॥

रहित स्थान रहता है आत्मा के मुक्त हो जाने पर आत्म प्रदेश उस स्थान में व्याप्त हो जाते हैं परिणामस्वरूप शरीरस्थ उन जीवप्रदेशों का जो आकार रहता है, वह मुक्त दशा में रह नहीं पाता है। उस में न्यूनता आ जाती है और वह न्यूनता भी शरीराधिष्ठित आत्मप्रदेशों के आकार के तीन भागों में से एक भाग कम होती है। इसी लिए ऊपर गाथा में कहा गया है कि जीव का दीर्घ या ह्रस्व जो संस्थान होता है, *उस में से तीसरा भाग कम कर देने पर अवशिष्ट संस्थान* सिद्ध जीवों में पाया जाता है।

मूल पाठ

तिण्णि सया तत्तीसा, धणू त्ति भागो य होइ नायव्वा।
एसा खलु सिद्धाणं, उक्कोसोगाहणा भणिया ॥५॥
चत्तारि य रयणीओ-रयणि-त्ति भागूणिया य बोद्धव्वा।
एसा खलु सिद्धाणं, मज्झिमओगाहणा भणिया ॥६॥
एक्का य होइ रयणी, साहीया अंगुलाइ अट्ठ भवे।
एसा खलु सिद्धाणं, जहण्णओगाहणा भणिया ॥७॥

---

* त्रीणि शतानि त्रयस्त्रिंशत् धनूंषि त्रिभागश्च भवति बोद्धव्या।
एषा खलु सिद्धानामुत्कृष्टा अवगाहना भणिता ॥
चतस्रश्च रत्नयः रत्नित्रिभागोनिका च बोद्धव्या।
एषा खलु सिद्धानां मध्यमावगाहना भणिता ॥
एका च भवति रत्निः साधिका अंगुलानि अष्ट भवेयुः।
एषा खलु सिद्धानां जघन्यावगाहना भणिता ॥

संस्कृत–व्याख्या

अथावगाहनामेवोत्कृष्टादिभेदेनाह— 'तिण्णि सते' इत्यादि, इयं च पञ्चधनुःशतमानानां 'चत्तारि ये' इत्यादि तु सप्तहस्तानाम् 'एगा ये' इत्यादि द्विहस्तमानानामिति । इयं च त्रिविधाऽप्यवगाहना यथा सप्तहस्तमानानां च उपविष्टानां सिद्ध्यताम् यथाऽपि इत्यादि । आक्षेप परिहारौ पुनरेवमत्र-ननु नाभिकुलकर पञ्चविंशत्यधिकपञ्चधनुःशतमान प्रतीत एव तद्भार्याऽपि मरुदेवी तत्प्रमाणैव, 'उच्चत्तं चेव कुलगरेहिं समम्' इति वचनात् अतस्तदवगाहना उत्कृष्टावगाहनातोऽधिकतरा प्राप्नोतीति कथं न विरोध ? अत्रोच्यते यद्यपि उच्चत्वं कुलकरतुल्यं तद् योषितामित्युक्तं तथापि प्राधिक्यत्वादस्य स्त्रीणां च प्रायेण पुम्भ्यो लघुत्वात् पञ्चैव धनु —शतान्यसावभवत् वृद्धकाले वा संकोचात् पञ्च धनुःशतमाना सा अभवद् उपविष्टा वाऽसौ सिद्धेति न विरोध अथवा बाहुल्येनाभिहितमुत्कृष्टावगाहनामानं, मरुदेवी त्वाश्चर्यरूपेत्येवमपि न विरोध ननु जघन्यतः सप्तहस्तोच्छ्रितानामेव सिद्धिः प्रागुक्ता तत्कथं जघन्यावगाहना अष्टाङ्गुलाधिकहस्तप्रमाणा भवतीति ? अत्रोच्यते सप्तहस्तोच्छ्रितेषु सिद्धिरिति तीर्थकरापेक्षं ये तु द्विहस्ता अपि कूर्मपुत्रादयः सिद्धाः अतस्तथा जघन्याऽवसेया अन्येत्वाहु —सप्तहस्तमानस्य सर्वतिसागोपागस्य सिद्ध्यतो जघन्यावगाहना स्यादिति ।

हिन्दी–भावार्थ

सिद्धों की उत्कृष्ट अवगाहना तीन सौ तेत्तीस धनुष और एक धनुष का तीसरा भाग मानी जाती है।

सिद्धों की मध्यम अवगाहना एक हाथ का तीसरा भाग कम चार हाथ बतलाई गई है।

सिद्धों की जघन्य अवगाहना आठ अंगुल अधिक एक हाथ होती है।

मूल पाठ

* आगाहणाए सिद्धा भवत्तिभागेण होइ परिहीणा ।
संठाणमणित्थंथं, जरामरणविप्पमुक्काणं ॥८॥

संस्कृत–व्याख्या

आगाहणाए गाहा स्पष्टा नवरम् अणित्थंथं ति अमु प्रकारमापन्नमित्थं इत्थं तिष्ठतीति इत्थंस्थं न इत्थंस्थं अनित्थंस्थं न कनचित्लौकिकप्रकारेण स्थितमिति ।

हिन्दी–भावार्थ

जिस अवगाहना (लम्बाई चौड़ाई) में सिद्धात्माएं विराजमान होती हैं वह मनुष्य जीवन की अवगाहना से तीसरा भाग कम होती है। जरा (वृद्धावस्था) और मरण से रहित सिद्ध जीवों का संस्थान (आकार) अनिश्चित होता है। लोक में जो संस्थान पाए जाते हैं उन में से किसी विशेष संस्थान का वहां कोई नियम नहीं होता।

मूल पाठ

जत्थ य एगो सिद्धो तत्थ अणंता भवक्खयविप्पमुक्का ।
अण्णोण्णसमवगाढा पुट्ठा सव्वे य लोगन्ते † ॥९॥

---

* अवगाहनायाः सिद्धाः भवत्रिभागेन भवन्तु परिहीनाः ।
संस्थानमनित्थंस्थं जरामरणविप्रमुक्तानाम् ॥

† यत्र चैकः सिद्धः, तत्रानन्ता भवक्षयविमुक्ताः ।
अन्योन्यसमवगाढाः स्पृष्टाः सर्वे च लोकान्ते ॥

संस्कृत-व्याख्या

अथ ते कि देशभन्न स्थिता उताऽयथस्तस्यामाशङ्कायामाह— जत्थ य एगो सिद्धो—यत्र च—यत्र च देशे एक सिद्धो—निर्लेपस्तत्र देशे अनन्ता किम् ?—भवक्षयविमुक्ता' इति भवक्षयेन विमुक्ता भवक्षयविमुक्ता अनन्त स्वरूपा भवावतरणपरिणामसिद्धस्य तदुस्माह । अन्योन्यसमवगाढा तथाविधाचिन्त्यपरिणामत्वाद्धर्मास्तिकायादिवदिति स्पष्टा — लग्ना सर्वे च लोकान्ते अलोकेन प्रतिस्खलितत्वात् अतएव लोयग्गे य पइट्ठिया' इत्युक्तमिति ।

हिन्दी-भावार्थ

सिद्ध जीव भवक्षय (जन्म मरण का नाश) के कारण मुक्त मान जाते हैं। जहां एक सिद्ध रहता है वहीं अनन्त सिद्ध आत्माएं निवास करती हैं। ये सब एक दूसरे का अवगाहन कर रहे हैं जिन आकाशप्रदेशों पर एक सिद्ध विराजमान है उन्हीं पर अनन्त सिद्ध अवस्थित हैं। अनेक दीपकों के प्रकाश जैसे एक दूसरे के साथ रहते हैं वैसे ही अनन्त सिद्ध जीवों के आत्मप्रदेश परस्पर अवगाहन को प्राप्त हो रहे हैं। इस के अतिरिक्त सभी सिद्धों के आत्मप्रदेश लोक के अन्त का स्पर्श भी कर रहे हैं।

मूल पाठ

* फुसइ अणंते सिद्ध सव्वपएसेहिं णियमसो सिद्धो।
ते वि असंखेज्जगुणा देसपएसेहिं जे पुट्ठा ॥१०॥

---

* स्पृशति अनन्तान् सिद्धान् सर्वप्रदेशैः नियमतः सिद्धः ।
तेऽपि असंख्येयगुणा देशप्रदेशैः ये स्पृष्टाः ॥

संस्कृत-व्याख्या

तथा फुसइ' गाहा स्पृशत्यनन्तान् सिद्धान् सर्वप्रदेशैरात्मसम्बन्धिभि णियमसो त्ति नियमेन सिद्ध तथा तऽयसंख्येयगुणा वर्तन्ते देश प्रदेशैश्च ये स्पृष्टा कथं ? सर्वप्रदेशस्पृष्टा कथम ? —सर्वात्म प्रदेशैस्तावदनन्ता स्पृष्टा एक सिद्धावगाहनायामन तानामवगाढत्वात् तथ एकदेशानाश्रित्य एवमेकैकप्रदेशानाश्रित्य ता एव भवन्ति देशो—द्वया दिप्रदेश समुदाय प्रदेशस्तु निर्विभागोंऽश इति सिद्धत्वासंख्येयदेश प्रदेशात्मक ततश्च मूलानन्तकमसंख्येयैरनन्तकैरसंख्येयैव च प्रदेशानन्त वगु णित यथोक्तमेव भवतीति ।

हिन्दी-भावार्थ

सिद्ध अपने आत्मप्रदेशों से अनन्त सिद्धों को स्पर्श किए हुए हैं और देश (दो से अधिक) एवं प्रदेश (एक आत्मप्रदेश) द्वारा जो स्पर्श किए हुए हैं, वे उन से असंख्यात गुणा हैं।

मूल पाठ

* असरीरा जीवघणा उवउत्ता दंसणे य नाणे य ।

सागारमणागारं लक्खणमेयं तु सिद्धाणं ॥११॥

संस्कृत-व्याख्या

अथ सिद्धानेव लक्षणत प्राह— असरीरा' गाहा, उक्तार्था संग्रह रूपत्वाच्चास्या न पुनरुक्ततेति ।

हिन्दी-भावार्थ

सिद्ध भगवान अशरीरी हैं औदारिक वैक्रिय आदि पञ्च

---

* अशरीरा जीवघना उपयुक्ता दर्शने च ज्ञाने च।
साकारमनाकार लक्षणमेतत् तु सिद्धानाम् ॥

विध नरारा से रहित हैं उन के आत्मप्रदेश सघन हैं, पोलार से रहित हैं दर्शन और ज्ञान के उपयोग से युक्त हैं, वे साकारोपयोग ज्ञानोपयोग वाले हैं तथा निराकारोपयोग-दर्शनोपयोग वाले हैं। यही सिद्धों का स्वरूप है।

मूल पाठ

* केवलणाणुवउत्ता जाणंति सव्वभावगुणभावे।
पासंति सव्वओ खलु केवलदिट्ठीहिं अणंताहिं ॥१२॥

संस्कृत-व्याख्या

'उवउत्ता दंसणे य णाणे य' ति यदुक्तं, तत्र ज्ञानदर्शनयोः सर्वविषयतामुपदर्शयन्नाह— 'केवल' गाहा केवलज्ञानोपयुक्ता न तु केवलदर्शनोपयुक्ता भावतस्तदभावात् जानन्ति सर्वभावगुणभावान् समस्तवस्तुगुणपर्यायान् तत्र गुणाः—सहवर्तिनः, पर्यायास्तु—क्रमवर्तिनः पश्यन्ति तथा पश्यन्ति सर्वतः खलु सर्वत एवेत्यर्थः केवलदृष्टिभिरनन्ताभिः —केवलदर्शनैरनन्तैरित्यर्थः अनन्तत्वात् सिद्धानामनन्तविषयत्वाद्वा दर्शनस्य केवलदृष्टिभिरनन्ताभिरित्युक्तम् इह चादौ ज्ञानग्रहणं प्रथमतया तदुपयोगस्या सिध्यन्तीति ज्ञापनार्थमिति।

हिन्दी-भावार्थ

सिद्ध भगवान केवल ज्ञानोपयोग से सब पदार्थों के गुण और पर्यायों को जानते हैं एवं अनन्त केवल दर्शनोपयोग से सभी पदार्थों के गुण और पर्यायों को देखते हैं।

---

* केवलज्ञानोपयुक्ता जानन्ति सर्वभावगुणभावान्।
पश्यन्ति सर्वतः खलु केवलदृष्टिभिरनन्ताभिः ॥

मूल पाठ

* णवि अत्थि माणुसाणं तं सोक्खं णवि य सव्वदेवाणं ।
जं सिद्धाणं सोक्खं अव्वाबाहं उवगयाणं ॥१३॥

संस्कृत–व्याख्या

अथ सिद्धानां निरुपमसुखता ख्यापयितुमाह— णवि अत्थि' गाहा व्याख्या नवरम् अव्वाबाहं ति विविधा आबाधा व्याबाधा तन्निषेधादव्याबाधा तामुपगतानां प्राप्तानामिति ।

हिन्दी–भावार्थ

नाना प्रकार की बाधाओं–पीडाओं से रहित सिद्धों को जो सुख प्राप्त है वह सुख न सब देवताओं को प्राप्त है और न सब मनुष्यों को ।

मूल पाठ

† जं देवाणं सोक्खं सव्वद्धापिण्डियं अणंतगुणं ।
ण य पावइ मुत्तिसुहं णंताहिं वग्गवग्गूहिं ॥१४॥

संस्कृत–व्याख्या

यस्मादेवमित्याह— जं देवाणं ' गाहा 'यतो' यस्माद्देवानाम्–अनुत्तरसुरान्तानां सौख्य ' त्रिकालिकसुखं सर्वाद्धया अतीतानागतवर्त

---

* नाप्यस्ति मानुषाणां तत्सौख्यं नापि च सर्वदेवानाम् ।
यत् सिद्धानां सौख्यमव्याबाधामुपगतानाम् ॥

† यद्देवानां सौख्यं सर्वाद्धापिण्डितमनन्तगुणम् ।
न च प्राप्नोति मुक्तिसुखमनन्तानि वर्गवर्गैः ॥

मानकालेन पिण्डित गुणित सर्वाद्धापिण्डित तयाऽनन्तगुणमिति, तदेवं प्रमाण विनाऽसद्भावकल्पनयऽऽकाशावाप्रदेश स्थाप्यत इत्येव सकललोका सावाकाशान तप्रदेशापूरणनानन्त भवति न च प्राप्नोति मुक्तिसुख—तब मुक्तिसुखसमानतां लभते अनन्तान नत्वाऽतिशयगुणस्य विविध देवसुख मित्याह अनन्ताभिरपि वर्गवर्गाभि वर्गवर्गगुणितमपि तत्र तद्गुणो वर्गो यथा द्वयोवर्गश्चत्वार तस्यापि वर्गो वर्गवर्गो यथा षोडश एवमनन्तशो वर्गितमपि । चूर्णिकारस्त्वाह–अनन्तरपि वर्गवर्ग–खण्डखण्ड खण्डित सिद्धसुख तत्रीयानन्तान तत्समखण्डसमतामपि न लभते इत्यर्थ । इतो नास्ति तमानुपादीनां सुख यत्सिद्धानामिति प्रक्रम ।

हिन्दी–भावार्थ

देवताओं के अकालिक सुख का एकत्रित कर के यदि अनन्त गुणा किया जाए तो भी वह मुक्ति सुख के अनन्तवें भाग की समता नहीं कर सकता है ।

मूल पाठ

* सिद्धस्स सुहो रासी सव्वद्धापिण्डिओ जइ हवेज्जा ।
सोऽनतवग्गभइओ सव्वागासे ण माएज्जा ॥१५॥

संस्कृत–व्याख्या

सिद्धसुखस्यवालपर्याय सद्भाव तरणाह– सिद्धस्स सहो सिद्धस्य मुक्तस्य सम्बन्धी सुख सुखानां सङ्घ राशि समूह सुखसंघात इत्यर्थ सर्वाद्धापिण्डित सर्वकालसमयगुणितो यदि भवेद् अनन्त चास्य कल्पनामात्रतामाह—सोऽनन्तवर्गभक्तो—अनन्तवर्गापवर्तित सन् समाभत

*सिद्धस्य सुखो राशि सर्वाद्धापिण्डितो यदि भवेद् ।
सोऽनन्तवर्गभक्त सर्वाकाशे न मायात ॥

गवेति भावार्थ सर्वाकाश लोकालोकरूपे न मायात् प्रथमत्र भावार्थ - इह किल विशिष्टाह्लाद रूप सुख गृह्यते ततश्च यत प्रारभ्य शिष्टाना सुख-सम्प्रवृत्तिस्तमाह्लादमवधीकृत्य एकैकगुणवृद्धितारतम्येन तावत्सावा-ह्लादो विशिष्यते यावदनन्तगुणवृद्धया निरतिशयनिष्ठां गत तत्त्श्चासावत्यन्तोपमातीतकान्तिको सुखविनिवृत्तिरूप स्तिमिततममहोदधिकल्पश्च माह्लाद एव सदा सिद्धाना भवति तस्माच्चारात् प्रथमाच्चा ध्यमपर्यन्तरालवर्तिनो ये तारतम्येनाह्लादविशेषास्त सर्वाकाशप्रदेशराशेरपि भूयासो भवन्ती यन किलोक्त-स वागासे ण माएज्ज त्ति अन्यथा प्रतिनियतस्यावस्थिति कथ तेषामिति सूरयोऽभिदधताति ।

हिन्दी—भावार्थ

एक सिद्ध क त्रैकालिक सुख को भी एकत्रित करके यदि उसे अनत विभागो मे विभक्त किया जाए तो उसका एक भाग भी सारे आकाश म नहीं समा सकता।

मूल पाठ

* जह नाम कोइ मिच्छो नगरगुणे बहुविहे वियाणतो।
न चएइ परिकहेउ उवमाए तहि असतीए ॥१६॥

संस्कृत—व्याख्या

अस्य च वक्ष्यमाणस्याधिकृतगाथाविवरणस्याय भावार्थ — य ए सुखमधस्तात् सिद्धे - सुखपर्यायतया व्यपदिष्टा तदपेक्षया तस्य प्रमाणात्कृष्यमाणस्यान ततमस्थानवर्ति वेनोपचारात्, सद्राशिश्च किला सद्भावस्थापनया सहस्र समयराशिस्तु शत सहस्र च शतेन गुणित जात

---

*यथा नाम कोऽपि म्लेच्छ नगरगुणान् बहुविधान् विजानन् ।
न शक्नोति परिकथयितु उपमाया तत्र असत्याम् ॥

वर्तं, गुणन च कर्न सर्वे समयसम्बन्धी धनो गुणपर्यायाणा मीलनाय सर्वाऽनन्तरानि किन दर्प तद्वगस्त धान सेनापवर्तित सर्ग आन सद्भमय, प्रत पूज्यत्वेन समाभूत एवनि भावाप इति यच्चेह सुखराशिगुणनमापवतन च तस्य सम्भावयाम-दर्प रिमान्तराधिना गणितेऽपि सति मनन्तवगणान्तरा तवहणानीव महास्वरूपेणापवर्तित किञ्चिदवशिष्यते स राशिरतिमहान् ततश्च सिद्ध-सुखराशिमहानिति बुद्धिजननाय शिष्यस्य तस्यैव वा गणितमार्गे व्युत्पत्तिकरणायमिदि। प्रत्र पुनिरमां गाथामव ध्याख्याति सिद्धगुणपर्यायराशि नभ प्रत्याप-गणितनम प्रदर्शनाय प्रमाण मल्परिमाणत्वात्सिद्धगुणपर्यायाणां, सर्वाण्यपिण्डित सर्वसमयसम्बधी सङ्कलित सन्, स घातत मनन्तशो इयर्थ वर्गं वर्गमूलभक्त प्रपवर्गित प्रत्यन्त सघरन इत्यर्थ यथा किल सर्वसमयसम्बधा सिद्धसुखराशि पञ्चपष्टिसहस्राणि पञ्च शतानि षट्त्रिंशध्वनि (६५५३६) स च वर्गेणापवर्तित सन् जान इ शते षटपञ्चाशदधिक साऽपि स्वगापवर्तितो जातो षोडश तस्य वार ततः द्वाविवैवमतिलघुत्वतोऽपि सर्वाकाशे न मायात् एतदेवाह सव्वागास न माएज्ज' त्ति। अथ सिद्धसुखस्यानुपमतां दृष्टान्तनाह— जह णा पूर्वार्ध व्यक्त न चएइ' त्ति न शक्नोति परिकथयितु नगर गुणानरण्यगतोऽरण्यवासिम्लेच्छस्य कृत इत्याह-उपमाया तत्र नगरगुणेष्वरण्ये वास्य पामिति कथामेव पुनरेवम्—

म्लेच्छ कोऽपि महारण्ये वसति स्म निराकुल ।
अन्यदा तत्र भूपालो दुष्टाश्वेन प्रवेशित ॥१॥
म्लेच्छेनासौ नृपो दृष्ट, सत्कृतश्च यथोचितम ।
प्रापितश्च निज देश, सोऽपि राज्ञा निज पुरम ॥२॥
ममायमुपकारीति कृतो राजातिगौरवात् ।
विशिष्टभोगभूतीना भाजन जन - पूजित ॥३॥

ततः प्रासाद-शृङ्गेषु रम्येषु काननेषु च ।
नृणां विलासिनीसार्धं भुक्तवान् भोगसुखान्यसौ ॥४॥
अन्यदा प्रावृषि प्राप्तौ मेघाम्बरमण्डितम ।
व्योम दृष्ट्वा ध्वनिं श्रुत्वा मेघानां स मनोहरम् ॥५॥
जातोत्कण्ठा दृष्ट्वा जातोऽरण्यवासगमं प्रति ।
विसर्जितश्च राजापि प्राप्तोऽरण्यमसौ ततः ॥६॥
पृच्छन्त्यरण्यवासाम्न नगरं तात ! कीदृशम् ?
स स्वभावान् पुर सर्वान् जानात्येव हि श्रवनम ॥७॥
न शशाक तदा (तदा) तेषां गदितुं स शृतादयम ।
वने वनचराणां हि, नास्ति सिद्धोपमा यत (तथा) ॥८॥

हिन्दी-भावार्थ

जैसे कोई म्लेच्छ (अरण्यवासी) नगर के बहुत से गुणों को जानता हुआ भी वहाँ उपमा के अभाव के कारण उन्हें कह नहीं सकता।

मूल पाठ

* इय सिद्धाणं सोक्खं अणोवमं णत्थि तस्स ओवम्मं ।
किंचि विसेसेणत्तो आवम्ममिणं सुणह वोच्छं ॥१७॥

संस्कृत-व्याख्या

अथ दार्ष्टान्तिकमाह— इय गाहा, इति एवम् अरण्ये नगरगुणा इवत्यपि सिद्धानां सौख्यमनुपमं वर्तते किमित्यमित्याह—यतो नास्ति तस्यौपम्यं तथापि बालजनप्रतिपत्तये किञ्चिद्विशेषेणाह—'एत्तो' त्ति

*इति सिद्धानां सौख्यमनुपमं नास्ति तस्य औपम्यं ।
किञ्चित् विशेषेण इतः औपम्यमिदं शृणुत वक्ष्यामि ॥

आप-वाक्यस्य—सिद्धिसुखस्य इवा वाऽनन्तरम् औपम्य—उपमानम् (इन) वर्ण्यमाण शृणुत वक्ष्ये इति ।

हिन्दी–भावार्थ

इसी प्रकार सिद्धों का सुख उपमा रहित है । इसकी कोई उपमा नहीं है ।

सिद्धों का सुख उपमा के द्वारा कथन नहीं किया जा सकता है यह सत्य है, तथापि जनसाधारण के लिए सिद्धों के सुख को दृष्टान्त द्वारा बतलाया जायगा । उसे सुनो ।

मूल पाठ

*जह सव्वकामगुणियं पुरिसो भोत्तुण भोयणं कोइ ।
तण्हाछुहाविमुक्को अच्छेज्ज जहा अमियतित्तो ॥१८॥
इय सव्वकालतित्ता अतुलं निव्वाणमुवगया सिद्धा ।
सासयमव्वावाहं चिट्ठन्ति सुही सुहं पत्ता ॥१९॥

संस्कृत–व्याख्या

जह' गाहा, 'यथा' इत्युदाहरणोपन्यासार्थः सर्वकामगुणित सञ्जातसमस्तकमनीयगुण नेप व्यक्तम् इह च रसनेन्द्रियेणैवाधिकृतेष्ट विषयप्राप्त्या औत्सुक्यनिवृत्त्या सुखप्रश्नेन सकलेन्द्रियार्थावाप्त्या तथौत्सुक्यनिवृत्तेः सुखलक्षणार्थम्, अन्यथा बाधान्तरसम्भवात् समार्थाभाव इति ।

---

* यथा सर्वकामगुणितं पुरुषो भुक्त्वा भोजनं कोऽपि ।
तृष्णाक्षुधाविमुक्तः आस्ते यथा अमृततृप्तः ॥
इति सर्वकालतृप्ता अतुलं निर्वाणमुपगता सिद्धाः ।
शाश्वतमव्याबाधं तिष्ठन्ति सुखिनः सुखं प्राप्ताः ॥

इय' गाहा इय एव सववालतप्ता शाश्वदभावात् अतुल निर्वाणमुपगता सिद्धा सवदा सकलौत्सक्यनिवत्त यतश्चवमत शाश्वत सवकालभावि अव्याबाध व्याबाधावर्जित सख प्राप्ता सुखिनस्तिष्ठन्तीति योग, सुख प्राप्ता इत्युक्त सुखिन इत्यनथकमिति चेत् नव दुःखाभावमात्रमुक्तिलक्षनिरासेन वास्तव्यसुखप्रतिपादनीयत्वादस्य तथाहि—मन्यन्तेऽपरापयन शाश्वतमव्याबाधसुख प्राप्ता सखिन स त निष्ठन्ति, न सु दु खाभावमात्रा विना एवंति।

हिन्दी—भावार्थ

जसे कोई पुरुष सब प्रकार के सुदर गुणा से युक्त भोजन को खाकर अमृत से तृप्त हुए व्यक्ति के समान पिपासा और क्षुधा से रहित हो जाता है इसी तरह सदा तृप्त रहने वाले उपमारहित निर्वाण (शान्ति) को प्राप्त हुए सिद्ध शाश्वत (नित्य) और बाधा रहित सुख को प्राप्त करके सुखी बने रहते हैं।

मूल पाठ

* सिद्ध त्ति य बुद्ध त्ति य पारगय त्ति य परपरगय त्ति।
उम्मुक्कम्मकवया अजरा अमरा असगा य ॥२०॥

---

* सिद्धा इति च बुद्धा इति च पारगता इति च परम्परागता इति।
उन्मुक्तकर्मकवचा अजरा अमरा असगाश्च ॥
निस्तीर्णसवदुःखा जाति जरामरण बन्ध विमुक्ता।
अव्याबाध सुखमनुभवन्ति शाश्वतं सिद्धा ॥
अतुलसुखसागरगता अव्याबाधमनुपम प्राप्ता।
सर्वामनागतामद्धा तिष्ठन्ति सुखिन सुख प्राप्ता ॥

णिच्छिण्णसव्वदुक्खा जाइजरामरणबंधणविमुक्का ।
अव्वाबाहं सुक्खं अणुहवंति सासयं सिद्धा ॥२१॥
अतुलसुहसागरगया अव्वाबाहं अणोवमं पत्ता ।
सव्वमणागयमद्धं चिट्ठंति सुही सुहं पत्ता ॥२२॥

संस्कृत-व्याख्या

साम्प्रतं प्रस्तुतं सिद्धपर्यायशब्दानाह— सिद्ध त्ति य गाथा सिद्धा इति च तेषां नाम कृतकृत्यत्वात् तथ बुद्धा इति केवलज्ञानेन विश्वावबोधात् पारगता इति च भवार्णवपारगमनात् परंपरगय त्ति-पुनर्बीजसम्यक्त्व ज्ञान चरणसम्प्राप्त्युपायपुरस्सरं तु परम्परया गता परम्परगता उच्यन्ते उन्मुक्तकर्मकवचा सकलकर्मविमुक्तत्वात् तथा अजरा वयसोऽभावात् अमरा आयुषोऽभावात् असगाश्च सकल क्लेशाभावात् इति । णिच्छिण्ण गाथा अतुल गाथा व्यक्तार्थे एवति ।

हिन्दी-भावार्थ

सिद्ध, बुद्ध, पारगत परम्परगत, उन्मुक्तकर्मकवच अजर अमर असंग ये सब सिद्ध जीवों के पर्यायवाचक शब्द हैं। सिद्ध कृतकृत्य को कहते हैं। केवल ज्ञान के द्वारा विश्व को जानने वाले बुद्ध कहलाते हैं। संसार रूपी समुद्र से पार हुए को पारगत कहा जाता है। सर्वप्रथम सम्यग्दर्शन की प्राप्ति, पुनः सम्यग् ज्ञान की प्राप्ति तदनन्तर सम्यक्चारित्र की प्राप्ति इस परम्परा द्वारा जिसने मोक्ष को प्राप्त किया है उसे परम्परगत कहते हैं। सब प्रकार के कर्मों से रहित उन्मुक्त-कर्म-कवच जरा आदि अवस्थाओं से रहित अजर आयु से रहित अमर और सब प्रकार के क्लेशों से रहित असंग कहलाते हैं।

सिद्ध सब प्रकार के दुःखों से रहित हो चुके हैं। जन्म जरा और मृत्यु के बंधन से विमुक्त है। बाधारहित और शाश्वत सुख का अनुभव करते हैं।

सिद्ध भगवान् उपमा रहित सुख के सागर में निमग्न हैं। बाधारहित तथा उपमारहित सुख को प्राप्त करके सदा के लिए सुखी बने रहते हैं।

मूल पाठ

*जदत्थि णं लोए तं सव्वं दुपडोयारं तंजहा—जीवा चेव अजीवा चेव, तसा चेव, थावरा चेव, सजोणिया चेव अजोणिया चेव साउया चेव, अणाउया चेव, सइन्दिया चेव अणिन्दिया चेव, सवेयगा चेव, अवेयगा चेव, सरूवी चेव, अरूवी चेव, सपोग्गला चेव अपोग्गला चेव संसार-समावन्नगा चेव, असंसारसमावन्नगा चेव, सासया चेव, असासया चेव।

—स्थानांगसूत्र स्थान २ उद्देशा १

* यदस्ति लोके तत्सर्वं द्विप्रत्यवतारं तद्यथा—जीवाश्चैव अजीवाश्चैव, त्रसाश्चैव स्थावराश्चैव सयोनिकाश्चैव अयोनिकाश्चैव, सायुष्काश्चैव अनायुष्काश्चैव सेन्द्रियाश्चैव अनिन्द्रियाश्चैव सवेदकाश्चैव अवेदकाश्चैव सरूपिणश्चैव अरूपिणश्चैव सपुद्गलाश्चैव अपुद्गलाश्चैव संसारसमापन्नकाश्चैव असंसारसमापन्नकाश्चैव, शाश्वताश्चैव अशाश्वताश्चैव।

दय सन्स्थान—मूर्षा वस्त इति समासान्ते अन् प्रत्यये सति सत्थिण गरथानवर्णादिमन्त सशरीरा स्त्यथ न अणिणाऽस्थिणी—मुक्ता सपुद्गला कर्माणुपुद्गलवन्तो जीवा सिद्धा ससार भव समापन्नका आश्रिता ससारसमापन्नका ससारिण अन्तिरे सिद्धा शाश्वता सिद्धा जन्ममरणाभिरहितत्वात् अशाश्वता —ससारिण तद्युक्तत्वादिति ।

हिन्दी—भावार्थ

ससार म जो वस्तु है उसे दो विभागो म विभक्त किया जा सकता है। जैसे कि जीव और अजीव।

जीव के दो—दो भेद होते हैं। जैसे कि—त्रस और स्थावर। सयोनिक 'उत्पत्तिशील, और अयोनिक (उत्पत्तिरहित सिद्ध) आयु वाले और आयु रहित (सिद्ध) —सेन्द्रिय इन्द्रियो वाले और अनिन्द्रिय इन्द्रियो से रहित (सिद्ध) सवेदक—स्त्री पुरुष आदि वेद से युक्त और अवेदक-वेद स रहित (सिद्ध), रूपी—रूप रस गध आदि स युक्त और अरूपी—रूप रस आदि से रहित (सिद्ध) सपुद्गल-पुद्गल युक्त और अपुद्गल पुद्गल से रहित (सिद्ध) ससारसमापन्नक ससार म रहने वाले और असंसार समापन्नक जन्ममरण रूप ससार स विमुक्त (सिद्ध) शाश्वत-नित्य (सिद्ध) और अशाश्वत ससारी।

मूल पाठ

* अत्थि ण भंते ! अकम्मस्स गती पण्णायति ? हन्ता अत्थि। कहन्न भंते ! अकम्मस्स गती पण्णायति? गोयमा ! निस्सगयाए निरगणयाए गतिपरिणामेण

*अस्ति भदन्त ! अकर्मणो गति प्रज्ञायते ? हन्त अस्ति।

बंधणछेयणयाए निरंधणयाए पुव्वप्पओगेण अकम्मस्स गती पण्णत्ता। कहन्नं भंते ! निस्संगयाए निरंगणयाए गइपरिणामेणं बंधणछेयणयाए निरंधणयाए पुव्वप्पओगेणं अकम्मस्स गती पण्णायति ? से जहानामए-केइ पुरिसे सुक्कं तुम्बं निच्छिड्डं निरुवहयं ति आणुपुव्वीए परिकम्मेमाणे २ दब्भेहि य कुसेहि य वेढेइ २ अट्ठहिं मट्टियालेवेहिं लिंपइ २ उण्हे दलयति भूतिं २ सुक्कं समाणं अत्थाहमतारमपोरिसियंसि उदगंसि पक्खिवेज्जा, से नूणं गोयमा ! से तुंबे तेसिं अट्ठण्हं मट्टियालेवेणं गुरुयत्ताए भारियत्ताए गुरुसंभारियत्ताए सलिलतलमतिवइत्ता अहे धरणितलपइट्ठाणे भवइ? हंता भवइ। अहेणं से तुंबे अट्ठण्हं मट्टियालेवेणं परिक्खएणं धरणितलमतिवइत्ता उप्पिं सलिलतलपइट्ठाणे भवइ ?, हन्ता भवइ,

---

कथन्नु भदन्त ! अकर्मणः गतिः प्रज्ञायते ? गौतम ! निःसङ्गतया नीरागतया गति-परिणामेन, बन्धन—छेदनतया निरिन्धनतया पूर्व-प्रयोगेन अकर्मणः गतिः प्रज्ञप्ता। कथन्नु भदन्त ! निःसङ्गतया नीरागतया, गतिपरिणामेन बन्धनछेदनतया निरिन्धनतया पूर्वप्रयोगेन अकर्मणः गतिः प्रज्ञायते ? तद्यथानाम कोऽपि पुरुषः शुष्कं तुम्बं निश्छिद्रम् निरुपहतम् इति आनुपूर्व्या परिकर्मयन २ दर्भैः च कुशैः च वेष्टयति २ अष्टभिः मृत्तिकालेपैः लिम्पति उष्णे ददाति भूयोभूयः शुष्कं सन्तं अस्ताघ अतारे अपौरुषेये उदके प्रक्षिपेत्। स नूनं गौतम ! सः तुम्बः तेषामष्टानां मृत्तिकालेपानां गुरुतया भारिकतया गुरुसम्भारिकतया

एव खलु गोयमा ! निस्संगयाए निरंगणयाए, गइपरिणामेण अकम्मस्स गई पण्णायति । कहन्नं भंते ! बंधणछेदणयाए अकम्मस्स गई पण्णत्ता ? गोयमा ! से जहानामए—कलसिंबलियाइ वा मुग्गसिंबलियाइ वा माससिंबलियाइ वा सिंबलिसिंबलियाइ वा एरंडमिंजियाइ वा उण्हे दिन्ना सुक्का समाणी फुडित्ता णं एगन्तमंतं गच्छइ एव खलु गोयमा ! ०। कहन्नं भन्ते ! निरंधणयाए अकम्मस्स गति पण्णत्ता ? गोयमा ! से

सलिलतलमतिक्रम्य अधो धरणीतलप्रतिष्ठाना भवति ? हन्त भवति। अथ सा तस्याष्टानां मृत्तिकालेपानां परिक्षयेण धरणीतलमतिक्रम्य उपरि सलिलतलप्रतिष्ठाना भवति ? हन्त भवति। एव खलु गौतम ! निःसङ्गतया नीरागतया गतिपरिणामेन अकर्मणः गतिः प्रज्ञायते। कथन्नु भन्त ! बन्धनछेदनतया अकर्मणः गतिः प्रज्ञप्ता ? गौतम ! तद्यथा नाम—कलायफलिका वा मुद्गफलिका वा माषफलिका वा सिंबलिफलिका वा एरण्डफलिका वा उष्णे दत्ता शुष्का सती स्फटित्वा एकान्तमन्तं गच्छति। एव खलु गौतम ! ० । कथन्नु भदन्त ! निरिन्धनतया अकर्मणो गतिः प्रज्ञप्ता ? गौतम ! तद्यथानाम—धूमस्य इन्धनविप्रमुक्तस्य ऊर्ध्वं विस्रसया निर्व्याघातेन गतिः प्रवर्तते। एव खलु गौतम ! ० । कथन्नु भन्त ! पूर्वप्रयोगेन अकर्मणः गतिः प्रज्ञप्ता ? गौतम ! तद्यथानाम काण्डस्य कोदण्डविप्रमुक्तस्य लक्ष्याभिमुखी निर्व्याघातेन गतिः प्रवर्तते। एव खलु गौतम ! निःसङ्गतया नीरागतया यावत् पूर्वप्रयोगेन अकर्मणो गतिः प्रज्ञप्ता।

बंधणछेयणयाए निरंधणयाए पुव्वप्पओगेण अकम्मस्स गती पण्णत्ता। कहन्न भंते! निस्संगयाए निरंगणयाए गइपरिणामेण बंधणछेयणयाए निरंधणयाए पुव्वप्पओगेण अकम्मस्स गती पण्णायति? से जहानामए-केइ पुरिसे सुक्कं तुम्बं निच्छिड्डं निरुवहयं ति आणुपुव्वीए परिकम्मेमाणे २ दब्भेहि य कुसेहि य वेढेइ २ अट्ठहिं मट्टियालेवेहिं लिंपइ २ उण्हे दलयति भूतिं २ सुक्कं समाणं अत्थाहमतारमपोरसियंसि उदगंसि पक्खिवेज्जा, से नूणं गोयमा! से तुंबे तेसिं अट्ठण्हं मट्टियालेवेणं गुरुयत्ताए भारियत्ताए गुरुसंभारियत्ताए सलिलतलमतिवइत्ता अहे धरणितलपइट्ठाणे भवइ? हंता भवइ। अहणं से तुंबे अट्ठण्हं मट्टियालेवेणं परिक्खएणं धरणितलमतिवइत्ता उप्पिं सलिलतलपइट्ठाणे भवइ?, हन्ता भवइ,

---

कथन्नु भन्त! अकर्मण गति प्रज्ञायते? गौतम! निःसंगतया नीरागतया गति-परिणामेन, बन्धन—छेदनतया निरिन्धनतया पूर्व प्रयोगेन अकर्मण गति प्रज्ञप्ता। कथन्नु भन्त! निःसंगतया नीरागतया, गतिपरिणामेन बन्धन छेदनतया निरिन्धनतया पूर्वप्रयोगेन अकर्मण गति प्रज्ञायते? तद्यथानाम कोऽपि पुरुष शुष्कं अलाबुं निश्छिद्रं निरुपहतं इति आनुपूर्व्या परिकर्मयन् २ दर्भैश्च कुशैश्च वेष्टयति २ अष्टभि मृत्तिकालेप लिम्पति उष्णे ददाति भूयोभूय शुष्कं सति अस्ताघ अतारे अपौरुषेये उदके प्रक्षिपेत। तन्नूनं गौतम! सा [illegible] तेषामष्टानां मृत्तिकालेपानां गुरुतया भारितया गुरुसंभारितया

एवं खलु गोयमा ! निस्संगयाए निरंगणयाए, गइपरिणामेण अकम्मस्स गई पण्णायति । कहं न भंते ! बंधणच्छेदणयाए अकम्मस्स गई पण्णत्ता ?, गोयमा ? से जहानामए—कलसिंबलियाइ वा मुग्गसिंबलियाइ वा माससिंबलियाइ वा सिंबलिसिंबलियाइ वा एरंडमिंजियाइ वा उण्हे दिन्ना सुक्का समाणी फुडित्ता ण एगंतमंत गच्छइ एवं खलु गोयमा ! ०। कहं न भन्ते ! निरंधणयाए अकम्मस्स गति पण्णत्ता ? गोयमा ! से

सलिलतलमतिवर्त्य अधो धरणीतलप्रतिष्ठाना भवति ? हन्त भवति। अथ सा अलाबू अष्टाना मृत्तिकालेपाना परिक्षयेण धरणीतलमतिवर्त्य उपरि सलिलतलप्रतिष्ठाना भवति ? हन्त भवति । एवं खलु गौतम ! निःसंगतया नीरागतया गतिपरिणामेन अकर्मणः गतिः प्रज्ञायते । कथन्नु भदन्त ! बंधनच्छेदनतया अकर्मणो गतिः प्रज्ञप्ता ? गौतम ! तद्यथा नाम—कलायफलिका वा मुद्गफलिका वा माषफलिका वा शिंबलिफलिका वा एरण्डफलिका वा उष्णे दत्ता शुष्का सती स्फुटित्वा एकान्तमंतं गच्छति। एवं खलु गौतम ! ० । कथन्नु भदन्त ! निरिन्धनतया अकर्मणो गतिः प्रज्ञप्ता ? गौतम ! तद्यथानाम—धूमस्य इन्धनविप्रमुक्तस्य ऊर्ध्वं विस्रसया निर्व्याघातेन गतिः प्रवर्तते । एवं खलु गौतम ! ० । कथन्नु भदन्त ! पूर्वप्रयोगेन अकर्मणो गतिः प्रज्ञप्ता ? गौतम ! तद्यथानाम काण्डस्य कोदण्डविप्रमुक्तस्य लक्ष्याभिमुखी निर्व्याघातेन गतिः प्रवर्तते । एवं खलु गौतम ! निःसंगतया नीरागतया यावत् पूर्वप्रयोगेन अकर्मणो गतिः प्रज्ञप्ता ।

जहानामए अमस्स इथणविप्पमुक्कस्स उड्ढं वीससाए निव्वाघाएण गती पवत्तति, एवं खलु गोयमा ! ०।
कहन्नं भंते ! पुव्वप्पओगेण अकम्मस्स गती पण्णत्ता ?,
गोयमा ! से जहानामए कण्डस्स कोदण्डविप्पमुक्कस्स लक्खाभिमुही निव्वाघाएण गति पवत्तइ। एवं खलु गोयमा ! नीसंगयाए निरंगणया जाव पुव्वप्पओगेण अकम्मस्स गती पण्णत्ता।

— व्याख्याप्रज्ञप्ति ७ शतक १ उद्देशक सू० २६८

संस्कृत-व्याख्या

गई पण्णायइ ति गतिः प्रज्ञायते अभ्युपगम्यत इति यावत् निस्संगयाए ति निःसंगतया कर्ममलापगमेन निरंगणयाए ति नीरागतया मोहापगमेन गतिपरिणामेण' त्ति गतिस्वभावतया अलाबुद्रव्यस्येव बंधणछेयणयाए ति कर्मबंधनछेदनेन एरण्डफलस्येव निरंधणताए त्ति कर्मेधनविमोचनेन धूमस्येव पुव्वप्पओगेण त्ति सकर्मतायां गतिपरिणामवत्त्वेन बाणस्येवेति। एतदेव विवृण्वन्नाह— कहं मिच्चाइ निस्संगय त्ति आदिदर्शनम् दब्भेहि य त्ति दर्भैः समूलैः कुसेहि य त्ति कुशैर्दर्भैरेव छिन्नमूलैः भूइं भूइं त्ति भूयो भूयः अट्ठाहिं मट्टियालेवेहिं इह यावत्करणाद् प्राकृतप्रमाण अलाबु— एवावगन्तव्यः तएव अबद्धमाणी अबुद्रपमाण कलसिवलियाइ वा' कलायाभिधानधान्यविशेषफलिका सिंबलि' ति बल्लादिफलिका एरण्डमिंजिया' एरण्डफलम्। एगतमंतं गच्छइ एवं इत्येवमन्तो निश्चयो वक्तव्या यावत् एक इत्यत्र। अन्तरसामान्तं प्रमाणं गच्छति इह च बीजस्य गमनेऽपि (यत्) कलायादिशिंबिकादिविरति यदुक्तं तत्तयोरभेदोपचारादिति।

"डन्न वीसमाए' ति ऊर्ध्व विस्रया स्वभाव नि यायाण रि स्टान्धाच्छान्नाभावात् ।

हिन्दी—भावार्थ

हे भदन्त ! कर्म रहित की गति होती है ?

हां गौतम ! होती है।

हे भदन्त ! कर्म रहित की गति किस प्रकार होती है ?

हे गौतम ! कर्ममल से रहित होने के कारण राग-द्वेष से रहित होने के कारण गति-स्वभाव होने के कारण कर्मबंधन का नाश होने से कर्मरूप ईंधन के जल जाने से पूर्व प्रयोग* के कारण कर्मरहित जीव की गति होती है ।

कर्म रहित जीव की गति का एक उदाहरण से समझिए। जैसे कोई पुरुष एक निश्छिद्र अखण्डित अनार-तुम्बक को क्रमशः दर्भ (दूब) और कुशा से लपेटता है फिर माटी के आठ लेपों से उसे लीपता है, तदनन्तर उसे धूप में रखकर सुखाता है। उस के अच्छी तरह सूख जाने के पश्चात् अथाह से रहित तर न सकने वाले पुरुष से भी अधिक गहरे पानी में उसे डाल देता है। वह तुम्बक माटी के उन आठ लेपों के गुरु भारी और अत्यन्त भारी होने के कारण सलिलतल का उल्लंघन कर के नीचे पृथ्वी-तल पर जाकर ठहर जाता है किंतु जल के द्वारा माटी के लेपों के उतर जाने पर वह तुम्बक पृथ्वीतल से ऊपर उठता हुआ अंत में पानी के ऊपर आ

* देखा गया है कि बाण को चलाने के लिए सर्वप्रथम बल लगाया जाता है, उस बल के प्रयोग से फिर वह बाण आगे सरकता है। वैसे ही निष्कर्म आत्मा शरीर से बलपूर्वक निकलता है इसी बल के प्रयोग से आत्मा में आगे गति होती है, इसी बलप्रयोग को पूर्वप्रयोग कहा जाता है।

जाता है । इसी प्रकार हे गौतम ! कर्म मल के दूर होने से, राग द्वेष से रहित हो जाने से और गति स्वभाव से कर्मरहित जीव की गति होती है ।

हे भदंत ! कर्म बन्धन से रहित होने के कारण कर्म रहित जीव की गति किस प्रकार होती है ?

हे गौतम ! जैसे कलाय की फली, मूंगों की फली, माष की फली, सिम्बलि की फली और एरण्ड की फली धूप में रख देने पर सूख जाती है, सूख कर फट जाती है तब उस के बीज एकान्त में जा पडते हैं । इसी प्रकार कर्मरहित जीव की गति होती है ।

हे भदंत ! कर्मरूप इंधन के जल जाने से कर्मरहित जीव की गति किस प्रकार होती है ?

हे गौतम ! जैसे इंधन से रहित धूम्र की स्वभाव से ऊर्ध्व गति होती है उसी प्रकार कर्मरहित जीव की भी गति होती है ।

हे भदंत ! पूर्व प्रयोग के द्वारा कर्मरहित जीव की गति किस प्रकार होती है ?

हे गौतम ! जैसे धनुष से छोड़ हुए लक्ष्य की ओर जाने वाले बाण की बेरोकटोक गति होती है । इसी प्रकार कर्मरहित जीव की भी गति होती है ।

मूल पाठ

* ते णं तत्थ सिद्धा हवंति सादीया अपज्जवसिया असरीरा जीवघणा दंसणनाणोवउत्ता निट्ठियट्ठा निरेयणा

---

* ते तत्र सिद्धा भवन्ति सादिका अपर्यवसिता अशरीरा

नाग्या णिम्मना वितिमिरा विसुद्धा सासयमणागयद्ध काल चिटठति । से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चइ—त ण तत्य सिद्धा भवन्ति सादीया अपज्जवसिया जाव चिट्ठन्ति ?, गोयमा ! स जहानामए बीयाण अग्गि-दड्ढाण पुणरवि अकुरुप्पत्ती ण भवइ, एवामेव सिद्धाण कम्मबीए ड्ढे पुणरवि जम्मुप्पत्ती न भवइ, से तेणट्ठेण गोयमा ! एव वुच्चइ—त ण तत्थ सिद्धा भवति सादी-या अपज्जवसिया जाव चिटठन्ति ।

—औपपातिक सूत्र सिद्धाधिकार

संस्कृत—व्याख्या

त ण तत्थ सिद्धा हवति ति स पूर्वोद्दिष्टविशेषणा मनुष्या तत्र लोकाग्र निष्ठितार्था स्युरिति मनन च संस्कृतमयन स त-
रागादिवासनामुक्त चित्तमत्र निरामयम् ।
सदाऽनियतदशस्य सिद्ध इत्यभिधीयते ॥१॥

यच्चापर प्रोच्यते—

जीवघना ज्ञानदर्शनोपयुक्ता निष्ठितार्था निरेजना नीरजस, निर्मला वितिमिरा विशुद्धा शाश्वतीमनागताद्धा काल तिष्ठन्ति । तत् केनार्थेन भदन्त ! एवमुच्यते—ते तत्र सिद्धा भवन्ति सादिका अपर्यवसिता यावत्तिष्ठन्ति ? गौतम ! तद्यथानाम बीजानामग्निदग्धा ना पुनरपि अकुरोत्पत्तिर्न भवति एवमेव सिद्धाना कर्मबीजे दग्धे पुनरपि जन्मोत्पत्तिर्न भवति । तत्तेनार्थेन गौतम ! एवमुच्यते—ते तत्र सिद्धा भवन्ति सादिका अपर्यवसिता यावत् तिष्ठन्ति ।

गुणसत्वान्तरज्ञानान्निवृत्त प्रकृति क्रिया ।
मुक्ता सर्वत्र तिष्ठन्ति व्योमवत्तापवर्जिता ॥१॥

इत्यन निरस्त यच्चोच्यते-सशरीरतायामपि सिद्धत्वप्रतिपादनाय, यदुत —

अणिमाद्यष्टविधं प्राप्यैश्वर्यं यतिन सदा ।
मोदन्ते निवृतात्मानस्तीर्णा परमदुस्तरम् ॥१॥

इति तदपाकरणायाह— असरीरा' अविद्यमान-पञ्चप्रकारशरीरा, तथा जीवघण त्ति योगनिरोधकाले रन्ध्रपूरणेन त्रिभागोनाऽवगाहना सन्तो जीवघना इति दंसणनाणोवउत्त त्ति ज्ञान साकार, दर्शनम्— अनाकार तयो उपयोगेनोपयुक्ता ये ते तथा निट्ठियट्ठ त्ति निष्ठितार्था — समाप्तसमस्तप्रयोजना नीरेयण' त्ति निरेजना —निश्चला नीरय' त्ति नीरजसा बध्यमानकर्मरहिता नीरया वा—निर्गतोत्सुक्या निम्मल' त्ति निर्मला पूर्वबद्धकर्मविनिर्मुक्तता द्रव्यमलवर्जिता वा वितिमिर' त्ति विगताज्ञाना विसुद्ध' त्ति कर्मविशुद्धिप्रकर्षमुपगता सासयमणागयद्ध काल चिट्ठति शाश्वतीम्—अविनश्वरी सिद्धत्वस्याविनाशात् अनागताद्धा भविष्यत्काल तिष्ठन्तीति जम्मुप्पत्ती त्ति जन्मना कर्मकृतप्रसूत्या उत्पत्तिर्या सा तथा, ज मग्रहणेन परिणामान्तरस्पात्तरुत्पत्ति भवतीत्याह प्रतिक्षणमुत्पादव्ययध्रौव्य युक्तत्वात्तद्भावस्येति ।

हिन्दी–भावार्थ

सिद्ध जीव मुक्ति मे विराजमान हैं वे मुक्ति मे जाने की अपेक्षा से सादि हैं, मुक्ति से कभी वापिस नही आते हैं इसलिए वे अनन्त हैं औदारिक वैक्रिय आदि पञ्चविध शरीरो से रहित हैं पोलार से रहित आत्मप्रदेश जाल है दर्शन और ज्ञान रूप उपयोग के धारक हैं कृतकृत्य हैं कम्पन से रहित हैं कर्मरूप रज और मल से रहित हैं अज्ञान रूप अन्धकार से रहित हैं,

सब प्रकार की विशुद्धि से युक्त है अनन्त भविष्यत्काल तक मुक्ति मे विराजमान रहने वाले है।

हे भगवन् ! मुक्ति म विराजमान सिद्धो को सादि, अनन्त आदि कहने का क्या कारण है ?

हे गौतम ! जसे अग्नि मे दग्ध बीजो म पुन अकुरोत्पत्ति नहीं होने पाती है इसी प्रकार कर्म-बीज के दग्ध होन पर सिद्धो की भी पुन जन्मोत्पत्ति नहीं होती है। इसलिए कहा गया है कि मुक्ति मे विराजमान सिद्ध सादि अनन्त अशरीरी जीवघन आदि शब्दो से व्यवहृत होते हैं।

मूल पाठ

* जीवा ण भते ! सिज्झमाणा कयरम्मि सघयणे सिज्झति ? गोयमा ! वइरोसभनारायसघयणे सिज्झति ।

हिन्दी–भावार्थ

गौतम स्वामी बोले—भगवन ! सिध्यमान (सिद्धि को प्राप्त हो रहे) जीव किस सहनन म सिद्ध होते हैं ?

भगवान बोले—गौतम ! वज्रऋषभनाराच नामक सहनन मे सिद्ध होते हैं।

---

* जीवा भदन्त ! सिध्यन्त कतरस्मिन सहनने सिध्यन्ति ? गौतम! वज्रऋषभनाराचसहनन सिध्यन्ति ।

मूल पाठ

* जीवा ण सिज्झमाणा कयरम्मि संठाणे सिज्झंति ?
गोयमा ! छण्हं संठाणाणं अण्णयरे संठाणे सिज्झंति ।

हिन्दी-भावार्थ

गौतम स्वामी बोले —भगवन् ! सिध्यमान ,सिद्ध पद प्राप्त हो रहे, जीव किस संस्थान से सिद्ध होते हैं ?

भगवान बोले —गौतम ! छह संस्थानों में से किसी भी एक संस्थान में सिद्ध होते हैं ।

मूल पाठ

† जीवा णं भंते ! सिज्झमाणा कयरम्मि उच्चत्ते सिज्झन्ति ? गोयमा ! जहण्णेण सत्तरयणीओ उक्कोसेण पञ्चधणुस्सए सिज्झन्ति ।

संस्कृत-व्याख्या

जहण्णेण सत्तरयणीए' त्ति सप्तहस्ते उच्चत्वे सिध्यन्ति । महावीरवत् उक्कोसेण पंचधणुसए त्ति ऋषभस्वामिवत् एतच्च द्वयमपि तीर्थकरापेक्षयोक्तम् यतो द्विहस्तप्रमाणा कूर्मापुत्रेण व्यभिचारो न वा मरुदेव्या सातिरेकपञ्चधनुःशतप्रमाणत्वात् ।

---

* जीवा भदन्त सिध्यन्त कतरस्मिन् संस्थाने सिध्यन्ति ? गौतम !
सिध्यन्ति ।
सिध्यन्ति ? गौतम!

हिन्दी-भावार्थ

गौतम स्वामी बोले—भगवन्! सिध्यमान जीव कितनी ऊंचाई में सिद्ध होते हैं?

भगवान बोले—गौतम! जघन्य (कम से कम) सात हाथ की ऊंचाई में और उत्कृष्ट (अधिक से अधिक) पांच सौ धनुष की ऊंचाई में जीव सिद्ध होते हैं।

मूल पाठ

* जीवाणं भंते! सिज्झमाणा कयरम्मि आउए सिज्झन्ति? गोयमा! जहण्णेणं साइरेगट्ठवासाउए उक्कोसेणं पुव्वकोडियाउए सिज्झन्ति।

संस्कृत-व्याख्या

साइरेगट्ठवासाउए त्ति सातिरेकाण्यष्टौ वर्षाणि यस्य तस्य तच्च तदायुश्चेति तत्र सातिरेकाष्टवर्षायुषि तत्र किलाष्टवर्षवयाश्चरणं प्रतिपद्यते ततो वर्षे प्रतिगते केवलज्ञानमुत्पाद्य सिध्यतीति। उक्कोसेणं पुव्वकोडीआउए त्ति पूर्वकोट्यायुर्नर: पूर्वकोट्या अन्ते सिध्यतीति न परत:।

हिन्दी-भावार्थ

गौतम स्वामी बोले—भगवन्! सिध्यमान जीव कितनी आयु में सिद्ध होते हैं?

भगवान बोले—गौतम! जघन्य कुछ अधिक आठ वर्ष की

---

* जीवा भन्त! सिध्यन्त: कतरस्मिन् आयुषि सिध्यन्ति? गौतम! जघन्येन सातिरेकाष्टवर्षायुष्का: उत्कर्षेण पूर्वकोटिकायुष्का: सिध्यन्ति।

आयु वाले तथा उत्कृष्ट करोड पूर्व की आयु वाले जीव सिद्ध होते हैं।

मूल पाठ

*अत्थि ण भंते ! इमीसे रयणप्पहाए पुढवीए अहे सिद्धा परिवसंति ? णो इणट्ठे समट्ठे, एवं जाव अहे सत्तमाए।

संस्कृत-व्याख्या

तं ण तत्थ सिद्धा भवंती त्ति प्राक्तनवचनाद् यद्यपि साक्षाद् सिद्धानां स्थानमित्यवसीयते तथापि मुग्धविनयस्य कल्पितविविधलोकान्तनिरासेन निरुपचरितलोकाग्रस्वरूपविज्ञापावबोधाय प्रश्नोत्तरसूत्रमाह— अत्थि ण मित्यादि व्यक्तं नवरं यदिदं रत्नप्रभाया अधस्तदेव लोकाग्रमिति तत्र सिद्धाः परिवसन्तीति प्रश्नः तत्रोत्तर—नायमर्थः समर्थ इति एवं सर्वत्र।

हिन्दी-भावार्थ

गौतम स्वामी बोले—भगवन् ! क्या इस रत्नप्रभा नामक पृथ्वी (नरक) के नीचे सिद्ध रहते हैं ?

भगवान बोले—गौतम ! रत्नप्रभा पृथ्वी के नीचे सिद्ध नहीं रहते हैं। इसी प्रकार यावत सातवीं पृथ्वी के नीचे भी सिद्ध नहीं रहते हैं।

---

* अस्ति भन्त ! अस्या रत्नप्रभाया पृथिव्या अध सिद्धा परिवसन्ति ? नायमर्थ समर्थ, एवं यावत् अध सप्तम्याः।

* अत्थि ण भंते ! सोहम्मस्स कप्पस्स अहे सिद्धा परिवसन्ति ? णो इणट्ठे समट्ठे, एवं सव्वेसिं पुच्छा। ईसाणस्स, सणकुमारस्स जाव अच्चुयस्स गविज्जविमाणाण अणुत्तरविमाणाण।

हिन्दी–भावार्थ

गौतम स्वामी ने पूछा भगवन ! क्या सिद्ध सौधर्म नाम के प्रथम देवलोक के नीचे रहते है ?

भगवान ने कहा—गौतम ! नही रहते है।

जिस प्रकार प्रथम देवलोक के सम्बन्ध मे पच्छा की गई है उसी प्रकार ईशान सनत्कुमार यावत अच्युत, ग्रवेयक विमान तथा अनुत्तर विमानो के सम्बन्ध मे भी पच्छा की गई और भगवान ने सब के सम्बन्ध मे 'नही रहते हैं' यही उत्तर दिया।

मूल पाठ

‡ अत्थि भंते ! ईसोपब्भाराए पुढवीए अहे सिद्धा परिवसन्ति ? णो इणट्ठे समट्ठे।

---

* अस्ति भदन्त ! सौधर्मस्य कल्पस्य अध सिद्धा परिवसन्ति ? नायमर्थ समर्थ एवं सर्वेषां पच्छा। ईशानस्य सनत्कुमारस्य यावद् च्युतस्य ग्रवेयकविमानानाम् अनुत्तरविमानानाम्।

‡ अस्ति भदन्त ! ईषत्प्राग्भाराया पृथ्व्या अध सिद्धा परिवसन्ति ? नायमर्थ समर्थ।

हिन्दी-भावार्थ

गौतम स्वामी बोले—भगवन् ! ईषत्प्राग्भारा (सिद्धशिला) नीचे क्या सिद्ध रहते हैं ?

भगवान् बोले—गौतम ! नहीं रहते हैं ।

मूल पाठ

*से कहि खाइ ण भंते ! सिद्धा परिवसन्ति ?

गोयमा ! इमीसे रयणप्पहाए पुढवीए बहुसम-रमणिज्जाओ भूमिभागाओ उड्ढं चंदिम-सूरिय-ग्गह-गण-णक्खत्त-तारा भवणाओ बहूइं जोयणसयाइं बहूइं जोयणसहस्साइं बहूइं जोयणसयसहस्साइं बहूओ जोयणकोडीओ बहूओ जोयणकोडाकोडीओ उड्ढतर उप्पइत्ता सोहम्मीसाण-सणंकुमार-माहिंद-बंभ-लंतग-महासुक्क-सहस्सार-आणय-पाणय-आरणच्चुय तिण्णि य अट्ठारे गेविज्जविमाणावाससए वीइवइत्ता विजय-वेजयंत-जयंत-अपराजिय-सव्वट्ठसिद्धस्स य महाविमाणस्स सव्व-उप-रिल्लाओ थूभियग्गाओ दुवालस-जोयणाइं अबाहाए एत्थ णं ईसीपब्भारा णामं पुढवी पण्णत्ता पणयालीसं जोयण-सय सहस्साइं आयाम विक्ख-

---

* अथ कुत्र भदन्त ! सिद्धा परिवसन्ति ? गौतम ! अस्य रत्नप्रभाया पृथिव्या बहुसमरमणीयाद् भूमिभागाद् ऊर्ध्वं चन्द्रमस्-सूर्य ग्रह-गण

भण एगा जायणकाडी जायानीम सयसहस्साइ तीस च सहस्साइ दोण्णी य अउणापण्ण जोयणसए किंचि विसेसाहिए परिरएण, ईसिपब्भारा य ण पुढवीए बहु-मज्झदेसभाए अट्ठ जोयणिए खेत्ते अट्ठ जोयणाइ बाहल्लेण, तयाणतर च ण मायाए मायाए पडिहाएमाणी पडिहाएमाणी सव्वसु चरिमपरतेसु मच्छियपत्ताओ तणु-यतरा अगुलस्स असखेज्जइभाग बाहल्लण पण्णत्ता।

ईसीपब्भाराए ण पुढवीए दुवालस णामधेज्जा पण्णत्ता तजहा–ईसी इ वा, इसीपब्भारा इ वा, तणू इ वा, तणू-तणू इ वा, सिद्धी इ वा, सिद्धालए इ वा, मुत्ति इ वा मुत्तालए इ वा, लोयग्गे इ वा, लोयग्गथूभिया इ वा, लोयग्गपडिवुज्झणा इ वा, सव्व-पाण-भूय जीव-सत्त-सुहावहा इ वा।

सर्वार्थ तारा भवनभ्यो बहूनि योजनशतानि बहूनि योजन सहस्राणि बहूनि योजन शत सहस्राणि बह्वी योजनकोटी बह्वी योजनकोटाकोटी ऊर्ध्वतरमुत्पत्य सौधर्मेशान सनत्कुमार माहेन्द्र ब्रह्म-लान्तक महाशुक्र सहस्रार आनत प्राणत आरणाच्युतान् त्रीणि च अष्टादश ग्रैवेयक विमानावास शतानि व्यतिव्रज्य विजय वैजयन्त जयन्त अपराजित सर्वार्थसिद्धस्य च महाविमानस्य सर्वोपरितनाया स्तूपिकाग्राया द्वादश-योजनानि अबाधया अत्र ईषत्प्राग्भारा नाम पृथ्वी प्रज्ञप्ता, पञ्चचत्वा रिंशद्योजन शतसहस्राणि आयामविष्कम्भेण एका योजनकोटि द्विचत्वा

ईसीपब्भारा ण पुढवी सेया सख–तल–विमल–सोल्लिय–मुणाल–दग–रय–तुसार–गोक्खीर–हार–वण्णा उत्ताणय–छत्त–सठाण–सठिया सव्वज्जुण–सुवण्णमई अच्छा सण्हा लण्हा घट्ठा मट्ठा णीरया णिम्मला णिप्पका णिक्ककडच्छाया समरीचिया सुप्पभा पासादीया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा, ईसीपब्भाराए ण पुढवीए सीयाए जोयणमि लोगते, तस्स जोयणस्स जे से उवरिल्ले गाउए, तस्स ण गाउअस्स जे से उवरिल्ले छभागिए, तत्थ ण सिद्धा भगवतो

रिंशत् शतसहस्राणि त्रिंशच्च सहस्राणि द्वे च एकोनपञ्चाशद् योजनशतानि किञ्चिद्विशेषाधिकानि परिरयेण ईषत्प्राग्भारायाः पृथिव्या बहुमध्यदेशभाग अष्टयोजनके क्षेत्र अष्टयोजनानि बाहल्येन सदा तदनन्तर च मात्रया मात्रया परिहीयमाना-परिहीयमाना सर्वेषु चरमपर्यन्तेषु मक्षिका पत्रात् तनुकतरा अगुलस्यासख्येयभागं बाहल्येन प्रज्ञप्ता ।

ईषत्प्राग्भारायाः पृथिव्या द्वादश नामधेयानि प्रज्ञप्तानि तद्यथा–ईषद् इति वा, ईषत्प्राग्भारा इति वा तनु इति वा तनुतनु इति वा सिद्ध इति वा, सिद्धालय इति वा, मुक्तिरिति वा मुक्तालय इति वा लोकाग्रमिति वा लोकाग्रस्तूपिका इति वा लोकाग्रप्रतिबोधना इति वा सर्व प्राण भूत जीव सत्त्व सुखावहा इति वा । ईषत्प्राग्भारा पृथिवी श्वेता शखतलविमल-सोल्लिय मृणाल दक रज -तुषार गोक्षीर हारवर्णा, उत्तान-छत्र-सस्थानसस्थिता सर्वार्जुनसुवर्णमयी अच्छा श्लक्ष्णा मसृणा घृष्टा मृष्टा नीरजा निर्मला निष्पका निष्कङ्कट-च्छाया, समरीचिका,

सासया अपज्जवसिया अणेग-जाइ-जरा-मरण-जोणि वेयण-संसारकलंकलीभावपुणब्भव-गब्भ-वास-वसही-पवंच-समइक्कंता सासयमणागयमद्धं चिट्ठन्ति । सू० ४३ ।

—औपपातिक सूत्र सिद्धाधिकार

संस्कृत-व्याख्या

स बहिं खाइ ण भंते ! त्ति इयत्र सति-नत बहिं त्ति-क्व दो खाइ ण ति—वाक्यालंकारे 'बहुसमे' त्यादि बहुसमत्वेन रमणीया य स तया तस्मात् अबाहाए त्ति अबाधया अन्तरेण ईसिपब्भार' त्ति ईषद्—अल्पो न रत्नप्रभादिपृथिव्या इव महान् प्राग्भारो-महत्त्व यस्या सा ईषत्प्राग्भारा । नामधेयानि व्यक्ता यव नवरं ईसिति वा ईषत् अल्पा पृथिव्यन्तरापेक्षया इति शब्द प्रवृत्तिनिमित्तप्रदर्शनं वा अन्ना विकल्प 'नायगपडिवुज्झणा इ व त्ति लोकाग्रमिति प्रतिबुध्यते अवसायते यया सा तथा सव्व-पाण भूय-जीव-सत्त सुहावहे त्ति इह प्राणा द्वीन्द्रियादय भूता-वनस्पतय जीवा-पञ्चेन्द्रिया पृथिव्यादयस्तु-सत्त्व एतेषां च पृथिव्यामिया सत्त्वोत्पन्नाना सा सुखावहा शीतादिदु खहेतूनामभावाविति, सेय ति श्वेता एतदेवाह आयसतल-विमल सोत्थिय-मुणाल-दग रय-तुसार-गोक्खीर-

---

प्रभा प्रासादीया दर्शनीया अभिरूपा प्रतिरूपा ईषत्प्राग्भारायाः पृथिव्या श्वेताया योजन लोकान्त, तस्य योजनस्य यत्तद् उपरितनं क्रोशं तस्य गव्यूतस्य य स उपरितन षड्भागिः', तत्र सिद्धा भगवन्त अशरीरा अपर्यवसिता अनन्त-जाति जरा-मरण-योनि-वेदना-संसार संकलीभाव-पुनर्भव-गर्भवास-वसति प्रपञ्चसमतिक्रान्ता शाश्वतीमनागतमद्धा तिष्ठन्ति ।

हार वण्ण त्ति व्यक्तमेव नवरम् धान्नतत्त दयणमिव बवविहदहिँ तलमिति पाठ आम्नातनमिव विमला या सा तथा मालिय त्ति कुसुमविनय सव्वज्जुणसुवण्णमइं' ति अर्जुनसुवर्ण इतव्वाम्बन मच्छा आकाशस्फटिकमिव सण्ह त्ति श्लक्ष्णपरमाणुस्क धनिष्पन्ना दक्षण तुनिष्पन्नपटवत् लण्ह त्ति मसृणा घुण्टितपटवत् घट्ठ' त्ति घट्टेव घट्टा खरशानया पाषाणप्रतिमावत् मट्ठ त्ति मृष्टव मृष्टा सुकुमारशानया प्रतिमेव शोधिता वा प्रमार्जनिकया अत एव णीरय' त्ति नीरजा —रजोरहिता णिम्मला कठिनमलरहिता णिप्पक' त्ति निष्पका आर्द्र मलरहिता अवलका वा णिक्कक्कडच्छाय त्ति निष्कङ्कटा निष्कवचा निरावरणत्यथ छाया शोभा यस्या सा तथा अकलङ्क शोभा वा, समरीचिय त्ति समरीचिका किरणयुक्ता अतएव सुप्पभ त्ति सुष्ठु प्रकर्षेण च भाति शोभते या सा सुप्रभेति पासादीय' त्ति प्रासादो-मन प्रमोद प्रयोजन यस्या सा प्रासादीया दरसणिज्ज त्ति दर्शनाय चक्षुर्व्यापाराय हिता दर्शनीया ता पश्यच्चक्षुर्न श्राम्यतात्यथ अभिरुव' त्ति अभिमत रूप यस्या सा अभिरूपा कमनीयरूपेत्यथ, पडिरुव त्ति द्रष्टार द्रष्टार प्रति रूप यस्या सा प्रतिरूपा जायणमि लागत' त्ति इह योजनसु सेधाङ्गुलयोजनमवसेय तदायस्य हि प्रमाणाङ्गु मानस्य सत्रिभागत्रयस्त्रिशदधिकधनु शतमयीप्रमाणत्वादिति, अणेग जाइ–जरा–मरण–जोणिवेयण अनेकजातिजरामरणप्रधानयोनिवेदना यत्र स तथा त ससार कलकलीभाव–पुणब्भव गब्भ वास वसही-पवचमइक्कता ससारे कलङ्कलीभावेन असमञ्जसत्वेन पुनर्भवा —पौनपुन्येनोत्पादा गर्भवासवसतयश्च गर्भाश्रयनिवासास्तास्य प्रपञ्चो—विस्तर स तथा तमतिक्रान्ता निस्तीर्णा पाठान्तरमिदम् —अणेग-जाइ-जरा मरण जोणि—ससार—कलकली—भाव—पुणब्भवगब्भवास वसहिपवचसमइक्कता। तिअनेक-जाति जरामरण प्रधान

ये तत्र गत्वा न तथा ते भावी समारम्भन्ति सन्तम् तत्र एतन्मीभावस्य प्रभवन—पुनःपुनरम्भरदा म्भवागमनीना प्रपञ्चरत रम्यनिक्रान्ता ये तत्र तथा। (प्रथमाचमूरिवत प्रति)

हिन्दी-भावार्थ

श्री गौतम स्वामी ने पूछा—हे भगवन्! सिद्ध कहाँ पर रहते हैं?

भगवान् बोले—हे गौतम! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के अत्यन्त समतल एवं रमणीय भूमिभाग से ऊपर चन्द्रमा सूर्य ग्रहगण नक्षत्र और ताराओं के भवन हैं। उन से सैकड़ों हजारों लाखों करोड़ों कोटाकोटियों योजन ऊपर जाकर सौधर्म ईशान सनत्कुमार माहेन्द्र ब्रह्म लान्तक महाशुक्र सहस्रार आनत प्राणत, आरण अच्युत नामक देवलोक हैं। इन के ऊपर तीन सौ १८ ग्रैवेयक विमान हैं। इन से ऊपर विजय वैजयन्त, जयन्त अपराजित सर्वार्थसिद्ध ये महाविमान हैं। सर्वार्थसिद्ध महाविमान के ऊपर की स्तूपिका के अग्रभाग से १२ योजन की दूरी पर ईषत्प्राग्भारा (सिद्धशिला) नामक पृथ्वी है जो कि ४५ लाख योजन की लम्बी और इतनी ही चौड़ी है। इस की परिधि (घेरा) एक करोड़ बयालीस लाख तीस हजार दो सौ उनचास योजन से कुछ अधिक है। ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी के सममध्यप्रदेश में आठ योजन का क्षेत्र आठ योजन की मोटाई वाला है। इस से आगे क्रमशः थोड़ा थोड़ा हीन होती हुई अन्त में मक्खियों के पंख से भी अधिक तनुतर (सूक्ष्मतर) तथा अंगुल के असंख्यातवें भाग जितनी इस की मोटाई रह जाती है।

ईषत्प्राग्भारा पृथिवी को १२ नामों से व्यवहृत किया जाता है। वे नाम इस प्रकार हैं—

१ ईषत्, २ ईषत्प्राग्भारा, ३ तनु,
४ तनूतनू ५ सिद्धि, ६ सिद्धालय
७ मुक्ति, ८ मुक्तालय, ९ लोकाग्र
१० लोकाग्रस्तूपिका, ११ लोकाग्रप्रतिबोधना,
१२ सर्वप्राणभूत जीव-सत्त्व-सुखावहा ।

ईषत्प्राग्भारा पृथिवी श्वेत है शखतल के समान विमल निर्मल है सौत्तिय (पुष्पविशेष) मृणाल-कमल नाल, दकरज-पानी का भाग तुषार ओसबिंदु गोक्षीर गाय का दूध हार (मोतियों का हार) के समान श्वेत वर्ण वाली है । छत्र को उलटा करके रखने से उसका जो आकार बनता है वही आकार ईषत्प्राग्भारा पृथिवी का होता है। ईषत्प्राग्भारा पृथिवी सारी की सारी श्वेत सुवर्णमयी है वह स्वच्छ है श्लक्ष्ण चिकनी है मसृण है–दुम्बरी किए हुए वस्त्र के समान कोमल है घृष्ट है—घिसे हुए पाषाण के समान स्पर्श वाली है, मृष्ट है–चोकना है चमकदार है नीरज है—धूलिरहित है निर्मल है मलरहित है निष्पंक है, कीचड रहित है ।

ईषत्प्रभाग्भारा पृथिवी स्निग्धछाया वाली है किरणो से युक्त है अच्छा–प्रभा कान्ति वाला है निशानपन्न है दर्शनयोग्य है सुदर है अत्यन्त सुन्दर है ।

ईषत्प्राग्भारा पृथिवी के एक योजन ऊपर लोकान्त है। उस योजन के ऊपर के कोस के छठे भाग में सिद्ध भगवान विराजमान हैं। वे सिद्ध सादि अनन्त जन्म जरा मृत्यु और योनि (उत्पत्तिस्थान) की विविध वेदना से रहित हैं । ससार के कलकलीभाव (विषमता) पुनर्भव-पुन पुन उत्पन्न होना,

गर्भावास गर्भ में निवास करना, इन सब प्रपचो से व रहित है। सिद्ध भगवान भविष्यतकाल मे सदा के लिए मोक्ष मे विराजमान रहेंगे।

मूल पाठ

*अत्थि एगं धुवं ठाणं, लोगग्गमि दुरारुहं।
जत्थ नत्थि जरा मच्चू, वाहिणो वेयणा तहा॥

—उत्तराध्ययन सूत्र अ० २५/८१

संस्कृत–व्याख्या

अस्त्येकमन्तीय ध्रुव शाश्वत स्थान लोकाग्र दुरारुहं ति दुःखेनारुह्यत इति दुरारोहम्। दुरापेणव सम्यग्दर्शनादित्रयेन तस्य प्राप्यत्वात्। यत्र न सन्ति जराऽऽदीनि प्रतीतानि वेदना शारीरादिपीडा तस्य व्याध्यभावत क्षमत्व जरा मरणाभावत शिवत्व वेदनाऽभावतो बाधारहितमुक्तमिति यथायोग भावनीयम्।

हिंदी–भावार्थ

लोक के अग्रभाग में एक ध्रुव नित्य स्थान है जिस पर रोहण करना अत्यन्त कठिन है। उस स्थान में अवस्थित जीवों को न जरा-बुढापा है न मृत्यु है, न व्याधियाँ हैं और नाही वेदनाएं होती हैं।

---

* अस्त्येकं ध्रुवं स्थानं लोकाग्रे दुरारोहं।
यत्र नास्ति जरा मृत्यु व्याधयो वेदनास्तथा॥

मूल पाठ

* निव्वाण ति अवाह ति सिद्धी लोगग्गमेव य।
मेम सिव अणावाह, ज तरति महेसिणो ॥

सस्कृत–व्याख्या

निर्वाति कर्माग्निविध्यापनाच्छीतीभवत्यस्मिन्निति निर्वाण इति वा – स्थम्पश्चाद्वा यत्रापि नास्ति तत्राध्याहार्य तत 'उच्यते इत्यध्याहृत्य' निर्वाणमिति यदुच्यते अबाधमिति यदुच्यते सिद्धिरिति यदुच्यते, लोकाग्रमिति यदुच्यते इति व्याख्येयम। क्षेम शिवमनाबाधमिति च प्राग्वत्। यान्ति यत स्थान विभक्तिव्यत्ययाद यत्र स्थाने वा तरन्ति प्लवन्ते गच्छन्तीत्यर्था महर्षयो महामुनय।

हिन्दी–भावार्थ

जिस स्थान को महर्षि लोग प्राप्त करते हैं उस स्थान को निर्वाण, अबाध सिद्ध लोकाग्र, क्षेम शिव और अनाबाध कहा जाता है।

मूल पाठ

‡ त ठाण सासयवास, लोगग्गमि दुरारुह।
ज सम्पत्ता न सोयन्ति भवोहन्तकरा मुणी ॥

—उत्तराध्ययन अ २३-८४

* निर्वाणमिति अबाधमिति सिद्धि लोकाग्रमेव च।
क्षेम शिवमनाबाध यत्तरन्ति महर्षय ॥
‡ तत्स्थान शाश्वतवास लोकाग्र दुरारोह।
यत् सम्प्राप्ता न शोचन्ति भवौघान्तकरा मुनय ॥

र अवस्थित भी रहते हैं।

मूल पाठ

* सिद्धा ण भंते ! केवइयं कालं वड्ढति ?

गोयमा ! जहण्णेण एक्कं समयं, उक्कोसेण अट्ठसमया।

हिन्दी-भावार्थ

भगवान गौतम बोले—भगवन् ! सिद्ध कितने काल तक रहते हैं ?

भगवान महावीर बोले—गौतम ! कम से कम एक समय क और अधिक से अधिक आठ समय तक।

मूल पाठ

† सिद्धा णं भंते ! केवइयं कालं अवट्ठिया ?

गोयमा ! जहण्णेण एक्कं समयं, उक्कोसेण छम्मासा।

हिन्दी-भावार्थ

भगवान गौतम बोले—भगवन् ! सिद्ध कितने काल तक अवस्थित रहते हैं ?

भगवान महावीर बोले—गौतम ! कम से कम एक समय तक और अधिक से अधिक छह मास तक।

---

* सिद्धा भदन्त ! कियन्तं कालं वर्धन्ते ?
गौतम ! जघन्येन एकं समयमुत्कर्षेण अष्ट समयान्।

† सिद्धा भदन्त ! कियन्तं कालमवस्थिता ?
गौतम ! जघन्येन एकं समयमुत्कर्षेण षण्मासान्।

मूल पाठ

* सिद्धा ण भंते ! किं सोवचया, सावचया, सोवचय-सावचया, णिरुवचयणिरवचया ?

गोयमा ! सिद्धा सोवचया, णो सावचया, णो सावचयसावचया, णिरुवचयणिरवचया ।

हिन्दी-भावार्थ

भगवान गौतम बोले—भगवन् ! सिद्ध क्या सोपचय—वृद्धि वाले हैं सापचय हैं—हानि वाले हैं सापचयसापचय हैं—वृद्धि और हानि वाले हैं तथा निरुपचय निरपचय हैं—वृद्धि तथा हानि वाले नहीं हैं ?

भगवान महावीर बोले—गौतम ! सिद्ध सोपचय हैं, सापचय नहीं हैं सापचय-सापचय नहीं हैं तथा निरुपचय निरपचय हैं ।

मूल पाठ

† सिद्धा ण भन्ते ! केवइयं कालं सोवचया ?

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं अट्ठसमया ।

---

* सिद्धा भदन्त ! किं सोपचया सापचया सोपचयसापचया, निरुपचयनिरपचया ?
गौतम ! सिद्धा सोपचया नो सापचया, नो सोपचय-सापचया निरुपचयनिरपचया

† सिद्धा भदन्त ! कियन्तं कालं सोपचया ?
गौतम ! जघन्येन एकं समयमुत्कर्षेण अष्टसमयान् ।

भगवान गौतम बोले—भगवन ! सिद्ध कितने काल तक सोपचय-वृद्धि वाले होते हैं ?

भगवान महावीर बोले—गौतम ! कम से कम एक समय तक और अधिक से अधिक आठ समय तक ।

मूल पाठ

* सिद्धा ण भंते ! केवइय काल णिरवचयणिरवचया ?

गोयमा ! जहण्णेण एग समय उक्कोसेण छम्मासा ।

हिन्दी–भावार्थ

भगवान गौतम बोले—भगवन् ! सिद्ध कितने काल तक निरुपचय निरपचय हैं एवं साथ वृद्धि हानि से रहित हैं।

भगवान महावीर बोले—गौतम ! कम से कम एक समय तक और अधिक से अधिक छह मास तक । अर्थात इतने काल तक सिद्ध अवस्थित रहते हैं।

※ परमात्मा अनादि है ※

मूल पाठ

† तेण कालेण तेण समएण समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी रोहे णाम अणगार पगइ-भद्दए पगइ-मउए पगइ-विणीए पगइ-उवसते पगइ-पयणुकोह-

* सिद्धा भदन्त ! कियन्त काल निरुपचयनिरपचया ?
गौतम ! जघन्येन एक समयमुत्कर्षेण षण्मासान् ।

† तस्मिन् काले तस्मिन् समये श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य भन्ते

माण माया-लोभे मिउ-मद्दव-संपन्ने अल्लीणे भद्दए वि
णीए समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूर-सामंते उड्ढं-
जाणू अहोसिरे झाण-कोट्ठोवगए संजमेण तवसा अप्पाणं
भावेमाणे विहरइ। तए णं से रोहे णामं अणगारे जाय-
सड्ढे जाव पज्जुवासमाणे एवं वदासी—

पुव्विं भंते ! लोए, पच्छा अलोए ? पुव्विं अलोए
पच्छा लोए ?

रोहा ! लोए य अलोए य पुव्विं पेते, पच्छा पेते।
दोवि एए सासया भावा अणाणुपुव्वी एसा रोहा !।

पुव्विं भंते ! जीवा, पच्छा अजीवा पुव्विं अजीवा
पच्छा जीवा ? जहेव लोए य अलोए य तहेव जीवा य

तस्मिन् रोहो नाम अनगारः प्रकृतिभद्रकः प्रकृतिमृदुकः प्रकृतिविनीतः
प्रकृत्युपशान्तः प्रतनुक्रोध मान माया-लोभः मृदुमार्दवसम्पन्न
आलीनः, भद्रकः विनीतः श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य अदूरसामन्ते
ऊर्ध्वजानुः, अधःशिराः ध्यानकोष्ठोपगतः संयमेन तपसा आत्मानं
भावयन् विहरति। ततः स रोहो नाम अनगारः जातश्रद्धः यावत्
पर्युपासमानः एवमवदत्—

पूर्वं भन्ते ! लोकः पश्चाद् अलोकः ? पूर्वमलोकः, पश्चाल्लोकः ?

रोह ! लोकश्च अलोकश्च पूर्वमपि एतौ पश्चादपि एतौ। द्वावपि
एतौ शाश्वतौ भावौ। अनानुपूर्वी एषा रोह !

पूर्वं भन्ते ! जीवाः पश्चाद् अजीवाः ? पूर्वमजीवाः पश्चाज्जीवाः ?
यथैव लोकश्च अलोकश्च तथैव जीवाश्च अजीवाश्च। एवं भव-

अजोवा य, एव भवसिद्धिया य अभवसिद्धिया य सिद्धो असिद्धा सिद्धा असिद्धा ।

पुव्वि भंते ! अडए, पच्छा कुक्कुडी ?, पुव्वि कुक्कुडी पच्छा अडए ?

रोहा ! से ण अडए कओ ? भयवं ! कुक्कुडिओ । सा ण कुक्कुडी कओ? भंते ! अडयाओ । एवामेव रोहा ! से य अडए सा य कुक्कुडी पुव्वि पेते पच्छा पेते । दुवेते सासया भावा, अणाणपुव्वी एसा रोहा !

पुव्वि भंते ! लोयते पच्छा अलोयते ?, पुव्वि अलोयते पच्छा लोयते ? रोहा ! लोयते अलोयते य जाव अणाणुपुव्वी एसा रोहा !

सिद्धिकाश्च, अभवसिद्धिकाश्च सिद्धि असिद्धि सिद्धा, असिद्धा पूर्व भदन्त ! अंडकं पश्चात् कुक्कुटी पूर्वं कुक्कुटी पश्चाद् अंडकम् ? रोह ! तद् अंडकं कुतः ? भगवन् ! कुक्कुटीतः सा कुक्कुटी कुतः ? भदन्त ! अंडकात् । एवमेव रोह ! तच्च अण्डकं सा च कुक्कुटी पूर्वमपि एते पश्चादपि एते द्वावपि तौ शाश्वतौ भावौ अनानुपूर्वी एषा रोह ! पूर्वं भदन्त ! लोकान्तः ? पश्चादलोकान्तः ? पूर्वमलोकान्तः पश्चाल्लोकान्तम् ? रोह ! लोकान्तश्चालोकान्तश्च यावद् अनानुपूर्वी एषा रोह ! पूर्वं भदन्त ! लोकान्तः, पश्चात् सप्तमावकाशान्तरः ? पृच्छा रोह ! लोकान्तं च सप्तममवकाशान्तरं पूर्वमपि द्वावपि एतौ यावदनानुपूर्वी एषा रोह ! एवं लोकान्तं च सप्तमश्च तनुवातः एवं घनवातः घनोदधिः सप्तमी पृथ्वी एवं लोकान्तमेकैकेन संयोजयितव्य

पुव्विं भंत ! लोयंते, पच्छा सत्तमे उवासंतरे ? पुच्छा । गोहा ! लोयन्ते य सत्तमे उवासन्तरे पुव्विं पि दोवि एते जाव अणाणुपुव्वी एसा रोहा ! एवं लोयंते य, सत्तमे य, तणुवाए एवं घणवाए घणोदही सत्तमा पुढवी, एवं लोयंते एकेक्केणं संजोयव्वं इमेहिं ठाणेहिं तंजहा—

ओवासवायघणउदही,पुढवी दीवा य सागरा वासा ।
नेरइयाई अत्थिय समया कम्माइं लेस्साओ ॥१॥
दिट्ठी दंसण णाणा सन्न सरीरा य योग उवओग ।
दव्व–पएसा पज्जव अद्धा किं पुव्विं लोयंते ॥२॥

भोम स्थान तद्यथा–अवकाश–वात–घनो–दधि–पृथ्वी–द्वीपाश्च सागरा वर्षाणि नैरयिकादि अस्तिकाय समया परमाणु [illegible], ॥१॥ दृष्टय दर्शनानि ज्ञानानि, संज्ञा, शरीराणि च योगा, उपयोगो द्रव्यप्रदेशा पर्यवा, अद्धा किं पूर्वं लोकान्तम ॥ ॥ पूर्व भदन्त ! लोकान्तं, पश्चात्सर्वाद्धा । यथा लोकान्तेन संयोजितानि सर्वाणि स्थानानि, एतानि एवमलोकान्तेनापि संयोजयितव्यानि सर्वाणि । पूर्व भदन्त ! सप्तम मवकाशान्तर पश्चात्सप्तम तनुवात एवं सप्तममवकाशान्तर सर्वै समं संयोजयितव्य यावत् सर्वाद्धया । पूर्वं भदन्त ! सप्तम तनुवात पश्चात् सप्तमो घनवात ? एतदपि तथैव नतव्य यावत् सर्वाद्धा । एवमुपरितनमेकैक संयोजयता यद् यद् अधस्तन तत्तद् छर्दयिता नतव्य यावद् अतीतानागताद्धा पश्चात्सर्वाद्धा यावद् अनानुपूर्वी एषा रोह ! तदेव भगवन् ! तदेव भदन्त ! इति यावद् विहरति ।

पुव्वि भने ! लायते पच्छा सव्वद्धा ? जहा लोय तेण मजोइया सव्व ठाणा एत एव अलोयतेण वि मजोएन्या सव्वे ।

पुव्वि भने ! मत्तमे उवासतरे, पच्छा मत्तम तणुवाए? एव मत्तम उवासतर सव्वेहि सम मजोएयव्व जाव मव्वद्धा ।

पुव्वि भते! मत्तमे तणवाए, पच्छा सत्तमे घणवाए? एय पि तहेव नेयव्व जाव मव्वद्धा, एव उवरिल्ल क्केक्क मजोयतेण जा-जो हिट्ठिल्लो त-त छड्डतेण नयव्व जाव अतीय-अणागयद्धा पच्छा सव्वद्धा जाव अणाणुपुव्वो एसा रोहा! सेव भते! सेव भते ! त्ति जाव विहरइ ।

(भगवती सूत्र शतक १ उद्देशक ६)

सस्कृत-व्याख्या

पगइभद्दए त्ति' स्वभावत एव परोपकारकरणशील पगइ-मउए त्ति' स्वभावत एव भावमार्दविक अतएव पगइ विणीए' त्ति तथा पगइ उवसत' त्ति क्रोधाद्यभावात पगइ-पयणु-कोहमाण-मायालोभे सत्यपि कषायोदये तत्कार्याभावात् प्रतनुक्रोधादि भाव मिउमद्दवसपन्ने' त्ति मद् यमार्दवम—प्रत्ययमहङ्कतिजयस्तस्स पन्न प्राप्तो गुरूपदेशात् य स तथा, आलीणे त्ति गुरुसमाश्रित सलीनो वा 'भद्दए त्ति' अनुपतापको गुरुशिक्षागुणात् विणीए त्ति, गरुसेवागुणात् 'भवसिद्धिया य त्ति भविष्यतीति भव भवा सिद्धि—निव तिर्येषावन भसिद्धिका भव्या इत्यय । मत्तमे उवासतरे' त्ति

और भगवान को वन्दना नमस्कार करने के अनन्तर निवेदन करने लगे—

भगवन् ! लोक पहले है अलोक पीछे है? या अलोक पहले है लोक पीछे है?

भगवान—रोह ! लोक और अलोक पहले भी हैं और पीछे भी अर्थात ये दोनो पदार्थ शाश्वत है नित्य है। इन में कोई पहले हो और कोई पीछे ऐसी बात नहीं है।

रोह—भगवन् ! जीव पहले है कि अजीव पहले है?

भगवान—रोह ! इसे लोक और अलोक के समान समझ लेना चाहिए।

इसी प्रकार भव्य अभव्य सिद्धि (मुक्ति) असिद्धि (ससार), सिद्ध (मुक्त), असिद्ध (ससारी) के सम्बन्ध मे भी समझ लेना चाहिए।

रोह—भगवन् ! अण्डा पहले है या मुर्गी? मुर्गी पहले है या अण्डा?

भगवान—रोह ! अण्डा कहा से उत्पन्न होता है?

रोह—भगवन् ! मुर्गी से।

भगवान—रोह ! मुर्गी कहा से उत्पन्न होती है?

रोह—भगवन् ! अण्डे से।

भगवान—रोह ! जैसे अण्डा और मुर्गी इन दोनो मे एक पहले है एक पीछे है ऐसा नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि ये दोनो ही शाश्वत हैं नित्य है। वैसे ही लोक और अलोक आदि भी ऐसे ही है शाश्वत है।

रोह—भगवन् ! लोकान्त पहले है अलोकान्त पीछे है? या अलोकान्त पहले है लोकान्त पीछे है?

भगवान—रोह ! लोकान्त और अलोकान्त इन दोनों में एक पहले है दूसरा पीछे है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। क्योंकि ये दोनों शाश्वत हैं नित्य हैं।

रोह—भगवन् ! लोकान्त पहले है, *सप्तम अवकाशान्तर पीछे है? या सप्तम अवकाशान्तर पहले है और लोकान्त पीछे है ?

भगवान—रोह ! लोकान्त और सप्तम अवकाशान्तर इन में कोई पहले नहीं है और कोई पीछे नहीं है। दोनों ही शाश्वत हैं, नित्य हैं।

इसी प्रकार लोकान्त सप्तम तनुवात, सप्तम घनवात सप्तम घनोदधि और सप्तम नरक के सम्बन्ध में भी समझ लेना चाहिए।

इसी प्रकार लोकान्त के साथ आकाश वात (तनुवात घनवात) घनोदधि पृथ्विए (सात नरक) द्वीप, सागर वर्ष (भरत आदि क्षेत्र) नरयिक आदि २४ दण्डक अस्तिकाय (धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकाय आकाशास्तिकाय जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय) समय (सूत्र में सूक्ष्म काल) कर्म (ज्ञानावरणीय आदि अष्टविध कर्म) छह लेश्याएं (कृष्ण नील आदि) तीन दृष्टिया (सम्यग्दृष्टि मिथ्यादृष्टि मिश्र-

---

*अवकाशान्तर आकाश को कहते हैं। लोकान्त और सप्तम नरक के मध्य में स्थित आकाश को सप्तम अवकाशान्तर कहा जाता है। प्रथम नरक का आकाश —प्रथम आकाश—' और दूसरी नरक का आकाश—द्वितीय, इसी क्रम से आगे— तीसरी का तीसरा चौथी का चतुर्थ पांचवी का पंचम छठी का षष्ठ और सातवीं नरक का आकाश सप्तम आकाश कहा जाता है।

दृष्टि) चार दर्शन (चक्षुदर्शन अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन केवल दर्शन) पाच ज्ञान, (मति श्रुत आदि) चार सज्ञाए (आहार, भय मैथुन परिग्रह ये चार सज्ञाए) पाच शरीर (औदारिक वैक्रिय आहारक तैजस, कार्मण), तीन योग (मन-योग वचन योग काय-योग), दो उपयोग (दर्शनोपयोग, ज्ञानोपयोग), द्रव्यप्रदेश (द्रव्य व खण्ड) पर्याय (अवस्थाए), और अद्धा (काल) इन को जोड लेना चाहिए । अर्थात् ये सभी शाश्वत हैं नित्य हैं इन मे कोई पहले नही हैं, कोई पीछे नही है ।

रोह—भगवन् ! लोकान्त पहले है, सर्वाद्धा (भूत वर्तमान, भविष्य तीनो काल सम्पूर्ण काल) पीछे हैं ?

भगवान—रोह ! दोनो शाश्वत है नित्य है इन मे कोई पहले हो कोई पीछे ऐसी बात नही है ।

जिस प्रकार लोकान्त के साथ अवकाशान्तर आदि को जोडकर प्रश्नोत्तर किए गए है, उसी प्रकार अलोकान्त के साथ अवकाशान्तर आदि को जोड लेना चाहिए प्रश्नोत्तर बना लेने चाहिए ।

रोह—भगवन् ! सप्तम आकाश पीछे है, अथवा सप्तम तनुवात ?

भगवान—रोह ! दोनो शाश्वत है नित्य हैं कोई पहले पीछे नहीं है ?

इसी प्रकार सप्तम आकाश के साथ घनवात घनोदधि आदि से लेकर सर्वाद्धा तक इन सभी को जोड लेना चाहिए ।

रोह—भगवन् ! सप्तम तनुवात पीछे है सप्तम घनवात पीछे नही है ।

भगवान–रोह ! दोनो शाश्वत हैं नित्य है इन में कोई पहले—पीछे नहीं है।

इसी प्रकार सप्तम तनुवात के साथ घनोदधि पृथ्वी आदि से लेकर सर्वाद्धा तक, इन सब का संयोजन कर लेना चाहिए।

वर्णनक्रम में सब से पहले लोकान्त को रखा है फिर अलोकान्त, पुनः सप्तम आकाश को इसी प्रकार उस के अनन्तर तनुवात घनवात घनोदधि आदि हैं और अन्त में सर्वाद्धा है। सर्वत्र प्रश्नोत्तरों में ऊपर के बोल के साथ क्रमशः नीचे के बोलो को जोडा गया है। जैसे लोकान्त का अवकाशान्तर आदि से लेकर सर्वाद्धा तक, इन सभी के साथ जोडा गया है तथा अवकाशान्तर को तनुवात आदि से लेकर सर्वाद्धा तक के साथ जोडा गया। इसी प्रकार ऊपर के बोल के साथ नीचे के सब बोलों को क्रमशः जोड देना चाहिए इसी क्रम से ऊपर के बोलो को छोडकर नीचे के बोलों के साथ शेष सभी बोलों का संयोजन करते चले जाना चाहिए। अन्त में प्रश्नावली अद्धा तक चली जाती है।

मूल पाठ

* जे वि य ते खंदया ! जाव किं अणंते सिद्धे ? तं चेव जाव। दव्वओ णं एगे सिद्धे सअन्ते, खेत्तओ णं सिद्धे

---

* येऽपि च ते स्कन्दक ! यावत् किमनन्त सिद्ध ? तच्चैव यावत् द्रव्यत —एक सिद्ध सान्त क्षेत्रत —सिद्धो असंख्येयप्रदेशिक असंख्येयप्रदेशावगाढ अस्ति पुन तस्यान्त । कालत —सिद्ध सादिरपर्यवसित नास्ति पुन तस्यान्त । भावत —सिद्धा अनन्ता

असखेज्जपएमिए असखेज्जपदेसोगाढे, अत्थि पुण से अन्त, कालओ ण सिद्धे सादीए अपज्जवसिए नत्थि पुण से अन्ते भावओ ण सिद्ध अणन्ता णाणपज्जवा, अणन्ता दसणपज्जवा जाव अणन्ता अगुरुलहुयपज्जवा नत्थि पुण से अन्ते, सेत्त दव्वओ सिद्धे सअन्ते, खेत्तओ सिद्धे सअन्ते, कालओ सिद्धे अणन्ते, भावओ सिद्धे अणन्ते ।

—भगवतीसूत्र शतक २, उद्देशक १

हिन्दी–भावार्थ

हे स्कन्दक ! सिद्ध अनन्त है परन्तु द्रव्य से एक सिद्ध सान्त है क्षेत्र से एक सिद्ध असख्यात—प्रदेशिक है, और असख्यातप्रदेशावगाढ है काल से एक सिद्ध सादि है, अनन्त है उसका अन्त नही होता है, भाव से एक सिद्ध की अनन्त ज्ञानपर्याय अनन्त दर्शन—पर्याय यावत अनन्त अगुरुलघुपर्याय है इन का कभी अन्त नही होता है।

साराश यह है कि द्रव्य और क्षेत्र से एक सिद्ध सान्त है किन्तु काल और भाव से एक सिद्ध अनन्त है।

मूल पाठ

†एगत्तेण साइया, अपज्जवसिया वि य ।

ज्ञानपर्यवा अनन्ता दर्शनपर्यवा यावत् अनन्ता अगुरुलघुपर्यवा नास्ति पुन तस्यान्त । समाप्त द्रव्यत —सिद्ध सान्त क्षेत्रत —सिद्ध सान्त कालत —सिद्धोऽनन्त भावत —सिद्धोऽनन्त ।

† एकत्वेन सादिका अपर्यवसिता अपि च ।
पृथक्त्वेन अनादिका अपर्यवसिता अपि च ॥

पुहत्तेण अणाइया, अपज्जवसिया वि य ॥

—उत्तराध्ययन सूत्र अ० ३६/६६

संस्कृत–व्याख्या

एकत्वेनासहायत्वेन त सादिका अपर्यवसिता अपि च यत्र हि काले त सिध्यन्ति स तथापि ननु कदाचित मुक्त भवन्ति यतो न पर्यवसानमिति। पृथक्त्वेन बहुत्वेन सामस्त्यापेक्षेण। यावत् अनादिका अपर्यवसिता अपि च नहि कदाचित् ते नामुक्त न भविष्यन्ति चेति।

हिन्दी–भावार्थ

एक सिद्ध की अपेक्षा सिद्ध सादि अनन्त हैं और बहुत्व की अपेक्षा सिद्ध अनादि अनन्त हैं।

※ परमात्मा एक है ※

मूल पाठ

* एगे सिद्धे।

—स्थानांगसूत्र स्थान १ सू० ४६

संस्कृत–व्याख्या

'एगे सिद्धे' सिध्यति स्म कृतकृत्यो भवति स्मेति सिद्धः समगच्छदपुनरावृत्त्या लोकाग्रमिति सिद्धः। सित वा बद्धं वा कर्म ध्मातं—दग्धं यस्य स निरुक्तात्—सिद्धः, कर्मप्रपञ्चनिर्मुक्त, स चैको द्रव्यार्थतया पर्यायार्थतस्त्वनन्तपर्याय इति अथवा सिद्धानामनन्तत्वेपि तत्साम्यादेकत्व अथवा कर्मशिल्प विद्यामन्त्र-योगागमार्थयात्राबुद्धितप — कर्मक्षयभेदेनानेकत्वेप्यस्यैकत्व सिद्धशब्दाभिधेयत्वसाम्यादिति।

---

* एक सिद्ध।

हिंदी-भावार्थ

संख्या की अपेक्षा से सिद्ध अनन्त होने पर भी सिद्ध जीवों की ज्ञान दर्शन आदि गुणसम्पदा समान होने के कारण ' सिद्ध एक हैं' ऐसा कहा जाता है।

मूल पाठ

णत्थि सिद्धी असिद्धी वा, णेव सन्न निवेसए
अत्थि सिद्धी असिद्धी वा, एव सन्न निवेसए ॥१॥
णत्थि सिद्धी निय ठाण, णेव सन्न निवेसए।
अत्थि सिद्धी निय ठाण, एव सन्न निवेसए ॥२॥

—सूत्रकृताग सूत्र श्रु० २, अ० ५ गा० २८ २६

संस्कृत–व्याख्या

सिद्धि अशेषकर्मच्युतिलक्षणा तद्विपर्यस्ता चासिद्धिर्नास्तीत्येवं नो संज्ञा निवेशयेत् अपि त्वस्ति—संसार लक्षणायाश्चातुर्विध्येनानन्तरमेव प्रसाधितत्वाद् अविगानेनास्तित्व प्रसिद्ध तद्विपर्ययेण सिद्धेरप्यस्तित्वम-निवारितमित्यतो अस्ति सिद्धिरसिद्धिर्वेत्येव संज्ञा निवेशयेदिति स्थितम्, इदमुक्त भवति—सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रात्मकस्य मोक्ष मार्गस्य सद्भावात् कर्म क्षयस्य च पीडोपशमादिनाऽप्यशेण दर्शनादेव कस्यचिदात्यन्तिक-कर्मन्हानि सिद्धरस्ति सिद्धिरिति तथा चोक्तम् ' दोषाकरणयोर्हानि

---

* नास्ति सिद्धिरसिद्धिर्वा, नैव संज्ञा निवेशयेत्।
अस्ति सिद्धिरसिद्धिर्वा एव संज्ञा निवेशयेत् ॥
नास्ति सिद्धि निज स्थानं नैव संज्ञा निवेशयेत्।
अस्ति सिद्धि निज स्थान एव संज्ञा निवेशयेत् ॥

सिद्धानां स्थाननिरूपणायाह— णत्थि सिद्धि इत्यादि सिद्ध—सकलकर्मक्षयलक्षणाया निज स्थानम्—ईषत्प्राग्भारास्य व्यवहारतो निश्चयतस्तु तदुपरियोजनक्रोशषड्भाग तत्प्रतिपादकप्रमाणाभावात् स नास्तीत्येव संज्ञा नो निवेशयेत यतो बाधकप्रमाणाभावात् साधकस्य चागमस्य सद्भावात्सत्ता दुर्निवारेति । अपिच—अपगताशेषकल्मषाणां सिद्धानां नैवास्ति विशिष्टं स्थानं आद्य तत्स्वतन्त्ररज्ज्वात्मकस्य लोकस्याग्रभाग द्रष्टव्य न च वक्तव्य यदनुमानादिनावत् सर्वव्यापिन सिद्धा इति यतो लोकालोकव्याप्याकाशं न चान्योऽपरद्रव्यस्य संभव तस्याकाशमात्ररूपत्वात् लोकमात्रव्यापित्वमपि नास्ति विकल्पानुपपत्ते तथाहि सिद्धावस्थायां तत्प्राप्तिरभ्युपगतमुत प्रागपि ? न तावत् सिद्धावस्थायां तत्र व्यापित्वभवन निमित्ताभावात् नापि प्रागवस्थायां तद्भाव सर्वसंसारिणां प्रतिनियतसुखदुःखानुभवो न स्यात् न च शरीराद्बहिरवस्थितमवस्थानमस्ति, तस्मात्तत्र तनस्य प्रमाणस्याभावात्—अत सर्वव्यापित्व विचार्यमाण न कथञ्चिद् घटते तस्माच्च लोकाग्रमेव सिद्धानां स्थान तद्गतिश्च कर्मविमुक्तस्योर्ध्व गति रिति कृत्वा भवति तथा चोक्तम्—

लाउ एरडफल अग्गी धूम य उसु धणु विमुक्क ।
गई पुव्वपओगेण एव सिद्धाण वि गईओ ॥१॥

तस्मादस्ति सिद्धिस्तस्याश्च निज स्थानमित्येव संज्ञा निवेशयेदिति ॥२६॥

हिन्दी—भावार्थ

सिद्धि (मुक्ति) नही है और असिद्धि (ससार) नही है ऐसी धारणा नही रखनी चाहिए प्रत्युत सिद्धि और असिद्धि दोनो हैं इस प्रकार की भावना रखनी चाहिए ।

जीव का निज-स्थान मुक्ति नही है ऐसा धारणा भी नही रखनी चाहिए किन्तु यही समझना चाहिए कि जीव का

निज स्थान मुक्ति ही है।

मूल पाठ

* एग भव? दुवे भव?, अक्खए भव?, अव्वए भव?, अवट्ठिए भव?, अणेगभूय भाव-भविए भव? सोमिला! एग वि अहं जाव अणेगभूयभावभविए वि अहं। से केणट्ठेणं भन्ते! एवं वुच्चइ जाव भविए वि अहं? सोमिला! दव्वट्ठयाए एगे अहं, नाणदंसणट्ठयाए दुविहे अहं, पएसट्ठयाए अक्खए वि अहं, अव्वए वि अहं, अवट्ठिए वि अहं, उवओगट्ठयाए अणेगभूय भाव-भविए वि अहं, से तेणट्ठेणं जाव भविए वि अहं।

—भगवतीसूत्र शतक १८, उद्देशक १०

संस्कृत-व्याख्या

एग भवं मित्यादि एको भवानित्येकत्वाभ्युपगमे आत्मनः ... श्रोत्रादि विज्ञानानामवयवानां च ... एकत्वं

---

* एको भवान्? द्वौ भवान्? अक्षयो भवान्? अव्ययो भवान्? अवस्थितो भवान्? अनेक भूत भाव-भविको भवान्? सोमिल! एकोऽप्यहं यावत् अनेक-भूत-भाव भविकोऽप्यहम्। तत्केनार्थेन भन्त! एवं उच्यते यावद् भविकोऽप्यहम्? सोमिल! द्रव्यार्थतया एकोऽहम् ज्ञानदर्शनार्थतया द्विविधोऽहम् प्रदेशार्थतया अक्षयोऽप्यहम् अव्ययोऽप्यहम् अवस्थितोऽप्यहम् उपयोगार्थतया अनेकभूतभावभविकोऽप्यहम्, तत्तेनार्थेन यावद् भविकोऽप्यहम्॥

दूषयिष्यामाति बद्धया पयनुयाग सोमिलभट्टेन कृत, द्वौ भवानिति न द्वित्वाभ्युपगम हमित्येकत्वविशिष्टस्याथस्य द्वित्वविरोधा त्वि दूषयिष्यामीति बुद्धया पयनुयोगो विहित, अवखए भव' मित्यादिना त पञ्चवेन नित्या भव ा पयनुयुक्त अणग भूय-भावभविए भव' ति अनक भवा – अतीता भावा सत्तापरिणामा भव्याश्च भाविनो यस्य स तदा अनेत चा तीत भविष्य सत्ताप्रश्नतानित्यतापक्ष पयनुयुक्त एकतरपरिग्र तस्यव दूषणायेति तत्र च भगवता स्याद्वादस्य निखिल दोषगोचरगति गातत्वात्तमवलम्ब्योत्तरमदायि– एग वि अहं' मित्यादि कथमित्येतत् ? इत्यत आह-दव्वट्ठयाए एगोऽहं ति जीवद्रव्यस्यकत्वे ऽहं न तु प्रदेशार्थतया तथाहि अनवयवा ममत्यवयवानामनेकत्वा पलम्भा न बाधक तथा कञ्चित्स्वभावमाश्रित्यैकत्वसख्याविशिष्टस्यापि पदार्थस्य स्वभावा तरद्वयापेक्षया द्वित्वमपि न विरुद्धमित्यत उक्त– नाणदसणट्ठयाए दुवे वि अह ति न चकस्य स्वभावभेदो न दृश्यते एको हि देवदत्तादि पुरुष एकत्व तत्तदपेक्षया पितृत्व-पुत्रत्व-भ्रातृत्वा दाननकान स्वभावान् लभत इति तथा प्रदेशाथतयाऽसख्येयप्रदेशतामाश्रि या ऽक्षयोऽप्यहं सवथा प्रदेशानां क्षयाभावात् तथाऽव्ययोऽप्यह कतिपयानामपि च व्ययाभावात् किमुक्त भवति ?—अवस्थितोऽप्यहं- नित्योऽप्यहम् असख्येयप्रदेशता हि न कदाचनापि व्यपति अतो नित्यताऽभ्युपगमेऽपि न दोष तथा उवओगट्ठयाए ति विविधविषयानुपयोगानाश्रित्यानेकभूतभाव-भविकोऽप्यहम् अतीतानागतयोहि कालयोरनेक विषय बोधानामा मन कथञ्चिदभिन्नानां भूत वान् भावि ताच्चत्यनित्यपक्षोऽपि न दोषायेति ।

हिन्दी—भावार्थ

भगवतीसूत्र म सामिल ब्राह्मण और भगवान महावीर के सवाद का वणन आता है । आग का वणन उसी सवाद का

र भाग है—

सोमिल—भदन्त ! आप एक हैं? दो हैं? अक्षय हैं? अव्यय हैं? अवस्थित (नित्य) हैं? भूत-वर्तमान और भविष्यत्काल के अनेक पर्यायों वाले हैं?

भगवान—सोमिल ! मैं एक भी हूँ यावत् अनेक पर्यायों वाला भी हूँ।

सोमिल—भदन्त ! किस अपेक्षा से आप ऐसा फरमाते हैं?

भगवान—सोमिल ! द्रव्य की अपेक्षा से मैं एक हूँ, ज्ञान दर्शन की अपेक्षा से मैं दो प्रकार का हूँ, आत्मप्रदेशों की अपेक्षा से अक्षय (क्षयरहित) हूँ, अव्यय (व्यय अर्थात् नाश से रहित) हूँ एवं अवस्थित नित्य भी हूँ। उपयोग की अपेक्षा से मैं अनेक भूत और भावी पर्यायों वाला हूँ।

इसलिए हे सोमिल ! मैं एक भी हूँ यावत् अनेक पर्यायों वाला भी हूँ।

परिशिष्ट न० १

मूल पाठ

* से किं तं सव्वजीवाभिगमे ?

सव्वजीवेसु णं इमाओ णव पडिवत्तीओ एवमाहिज्जंति । एगे एवमाहंसु—दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, जाव दसविहा सव्वजीवा पण्णत्ता । तत्थ जे ते एवमाहंसु दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, ते एवमाहंसु तंजहा—सिद्धा य असिद्धा य त्ति ।

---

*अथ कोऽसौ सर्वजीवाभिगम ?

सर्वजीवेषु इमा नवप्रतिपत्तय एवमाख्यायन्ते —एके एवमाहु — द्विविधा सर्वजीवा प्रज्ञप्ता यावद् दशविधा सर्वजीवा प्रज्ञप्ता । तत्र ये ते एवमाहु —द्विविधा सर्वजीवा प्रज्ञप्ता ते एवमाहु तद्यथा- सिद्धाश्च असिद्धाश्च इति ।

सिद्धो भदन्त ! सिद्ध इति कालत कियच्चिरं भवति ?

गौतम ! सादिकापर्यवसित । असिद्धो भदन्त ! असिद्ध इति० ? गौतम ! असिद्धो द्विविध प्रज्ञप्त तद्यथा—अनादिको वा अपर्यवसित अनादिको वा सपर्यवसित । सिद्धस्य भदन्त ! कियत्कालमन्तरं भवति ? गौतम ! सादिकस्य अपर्यवसितस्य नास्त्यन्तरम् । असिद्धस्य भदन्त ! कियदन्तरं भवति ? गौतम ! अनादिकस्य अपर्यवसितस्य नास्त्यन्तरम् । अनादिकस्य सपर्यवसितस्य नास्त्यन्तरम् । एतेषां भदन्त ! सिद्धानामसिद्धानाञ्च कतरे ... ? गौतम ! सर्वस्तोका सिद्धा असिद्धा अनन्तगुणा ।

सिद्धे ण भन ! सिद्धे त्ति कालतो केवचिर होति ?,

गोयमा ! साती अपज्जवसिए।

असिद्धेण भते ! असिद्धत्ति ० ?

गायमा ! असिद्ध दुविह पण्णत्त, तजहा—अणाइए वा अपज्जवसिए, अणातीए वा सपज्जवसिए।

सिद्धस्स ण भत ! केवतिकाल अतर होति ?,

गायमा ! सातियस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अतर।

असिद्धस्स ण भत ! केवइय अतर होइ ?

गोयमा ! अणातियस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अतर, अणातियस्स सपज्जवसियस्स णत्थि अतर।

एएसिण भन ! सिद्धाण असिद्धाण य कयरे २ ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा सिद्धा असिद्धा अणतगुणा।

—जीवाभिगम सूत्र २४४

सस्कृत-व्याख्या

स किं त' मित्यादि अथका सो सवजीवाभिगम ? सवजीवा ससारिमुक्त भ्गा गुरुराह—स"वजावमु ण मि"य दि सवजीवेसु सामा"ल एना अन तर वक्ष्यमाणा नव प्रतिपत्तय एवम अनन्तरमुपन्यस्यमानन प्रकारणाभ्याय त ता एवाह—एके एवमुक्तवन्ता—द्विविधा सवजावा प्रज्ञप्ता । एके एवमुक्तव तस्त्रिविधा सव जीवा प्रज्ञप्ता एव यावदेके एवमुक्तव तो दशविधा सवजीवा प्रज्ञप्ता ।

तत्थे त्यादि तत्र ये ते एवमुक्तवन्तो द्विविधा सवजीवा प्रज्ञप्तास्ते एवमुक्तवन्तस्तद्यथा—सिद्धाश्चासिद्ध सित ार कम्म

स्मात्—सम्यगित्यत्र यस्ते सिद्धा स्तपोऽन्तरादित्वादित्यादिनिवृत्ति निर्गच्छन्ति सिध्यन्ति मुक्ता इत्यर्थ । असिद्धा ससारिण च सा० ? स्थानान्तरभेदमन्यानाथो । सम्प्रति सिद्धस्य कायस्थितिमाह—सिद्ध ण, मित्यादि सिद्धो भदन्त ! सिद्ध इति—सिद्धत्वेन कालत कियच्चिर भवति ? भगवानाह—गौतम ! सिद्ध सादिकोऽपर्यवसित तत्र सादिता समारविप्रमुक्तिसमये सिद्धत्वभावात अपर्यवसितता सिद्धत्व च्युतेरसम्भवात । असिद्धविषय प्रश्नसूत्र सुगम ।

भगवानाह—गौतम ! असिद्धो द्विविध प्रज्ञप्तस्तद्यथा—अनादिको पर्यवसित अनादिक सपर्यवसित । तत्र यो न जातुचिदपि सेत्स्यति अभव्य वाल तथाविधमामग्रयभाव द्वा सो नाद्यपर्यवसित यस्तु सिद्धि गत साऽनादिसपर्यवसित । साम्प्रतमन्तर निश्चितयिषुराह – सिद्धस्स ण भते ! इत्यादि प्रश्नसूत्र सुगम भगवानाह—गौतम ! सिद्धस्य सादिकस्यापर्यवसितस्य नास्त्यन्तरम अत्र निमित्तकारणहेतुषु सर्वासा विभक्तीना प्रायो दर्शन मिति न्यायात् तृतीयार्थे षष्ठी ततोऽयमर्थ — यस्मात् सिद्ध सादिरपर्यवसितस्तस्मान्नास्त्यन्तरम् अपर्यवसितत्वा द्योगात् असिद्ध सूत्र असिद्धस्यानादिकस्यापर्यवसितस्य नास्त्यन्तरम्, अपर्यवसितत्वादेवासिद्धत्वाप्रच्युत अनादिकसपर्यवसितस्यापि नास्त्यन्तर भवाऽभिनिवृत्तायोगात् साम्प्रतमल्पबहुत्वमाह — एएसि ण मित्यादि प्रश्न सूत्र सुगम भगवानाह —गौतम ! सर्वस्तोका सिद्धा असिद्धा अनन्तगुणा निगोदजीवानामतिप्रभूतत्वात् ।

हिन्दी—भावार्थ

जीवाभिगम (जिस म केवल ससारी जीवो का वणन है) में अनन्तर सर्वजीवाभिगम (जिस म ससारी और मुक्त, दोनो प्रकार के जीवो का वणन है) का स्थान है । अनगार गौतम ने भगवान महावीर से पूछा—भन्त ! सर्वजीवाभिगम म क्या

वर्णन है ?

भगवान बोले-गौतम! सब जीवों का वर्णन करने वाली नव प्रतिपत्तियां (अध्ययन) कही गई है। जैसे—

कई एक ऐसा कहते हैं कि सब जीव दो प्रकार के होते हैं यावत् दस प्रकार के होते हैं। जो यह कहते हैं कि जीव दो प्रकार के होते हैं उन की मान्यता इस प्रकार है—

१—सिद्ध, और २—असिद्ध

अनगार गौतम बोले—भदन्त! सिद्ध भगवान की सिद्धत्व रूप से कितनी स्थिति होती है?

भगवान महावीर ने कहा—गौतम! सिद्ध भगवान की स्थिति एक सिद्ध की अपेक्षा से सादि अनन्त होती है।

अनगार गौतम बोले—भदन्त! असिद्ध जीवों (संसारी जीवों) की असिद्धत्व रूप से कितनी स्थिति होती है?

भगवान महावीर ने कहा—गौतम! असिद्ध जीव दो प्रकार के कहे गये हैं जैसे—

१ अनादि-अनन्त, २ अनादि-सान्त

अनगार गौतम बोले—भदन्त! काल की अपेक्षा से सिद्ध भगवान का कितना अन्तर होता है? अर्थात् सिद्ध सिद्धत्व को छोड़कर पुनः कब सिद्ध बनते हैं?

भगवान महावीर ने कहा—गौतम! सादि अनन्त सिद्ध भगवान का कोई अन्तर नहीं होता है। अर्थात् सिद्ध भगवान सिद्धत्व से कभी रहित नहीं होते हैं।

अनगार गौतम बोले—भदन्त! काल की अपेक्षा से असिद्ध जीव का कितना अन्तर होता है? अर्थात् असिद्ध जीव

सइंदिए णं भंते ! कालतो केवचिरं होइ ?

गोयमा ! सइंदिए दुविहे पण्णत्ते—अणातीए वा अपज्जवसिए, अणाइए वा सपज्जवसिए । अणिंदिए सातीए वा अपज्जवसिए दोण्ह वि अंतरं नत्थि । सव्व-त्थोवा अणिंदिया, सइंदिया अणंतगुणा ।

अहवा दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता तंजहा—सकाइया चेव अकाइया चेव एवं चेव एवं सजोगी चेव अजोगी चेव

अनिन्द्रिय सादिका वा अपर्यवसित । द्वयोरपि अन्तरं नास्ति । सर्वस्तो-का अनिन्द्रिया, सेन्द्रिया अनन्तगुणा ।

अथवा द्विविधा सर्वजीवा प्रज्ञप्ता तद्यथा—सकायिकाश्चैव, अकायिकाश्चैव । एवं चैव एवं सयोगिनश्चैव, अयोगिनश्चैव तथैव । एवं सलेश्याश्चैव अलेश्याश्चैव सशरीराश्चैव अशरीराश्चैव । संस्थानम् अन्तरम् अल्पबहुत्वम् यथा सेन्द्रियाणाम् ।

अथवा द्विविधा सर्वजीवा प्रज्ञप्ता । तद्यथा—सवेदकाश्चैव अवेदकाश्चैव ।

सवेदको भदन्त ! सवे० । गौतम ! सवेदक त्रिविध प्रज्ञप्त । तद्यथा—अनादिक अपर्यवसित, अनादिक सपर्यवसित सादिक सपर्यवसित । तत्र य स सादिक सपर्यवसितः सो जघन्येन अन्तर्मुहूर्तम् उत्कर्षेण अनन्त कालं यावत् क्षेत्रत अपार्ध पुद्गलपरिवर्त देशोनम् ।

अवेदको भदन्त ! अवेदक इति कालत कियच्चिर भवति ? गौतम ! अवेदका द्विविध प्रज्ञप्त । तद्यथा—सादिको वा अपर्यवसित सादिको वा सपर्यवसित । तत्र य स सादिक सपर्यवसित स जघन्येन एक समयम् उत्कर्षेण अन्तर्मुहूर्तम् ।

असिद्धत्व का छोड कर पुन ये असिद्ध बनते है ?

भगवान महावीर ने कहा—गौतम ! अनादि अनन्त असिद्ध जीव का अन्तर नहीं होता है। अर्थात् असिद्ध जीव असिद्धत्व को छोड कर (सिद्धत्व को प्राप्त कर के) पुन असिद्धत्व को कभी प्राप्त नहीं होते हैं। क्योंकि अनादि अनन्त होने के कारण वे असिद्धजीव असिद्धत्व का कभी परित्याग ही नहीं कर पाते है।

इसी प्रकार अनादि सान्त असिद्ध जीवों का भी अन्तर नहीं होता है। क्योंकि अनादि सान्त असिद्ध जीव असिद्धत्व का परित्याग करके अर्थात सिद्धत्व को प्राप्त करके पुन असिद्धत्व को प्राप्त नहीं होते हैं सिद्धदशा को छोड कर असिद्धदशा में नहीं आते हैं।

अनगार गौतम बोले—भदन्त ! इन सिद्ध और असिद्ध जीवों में कौन अल्प और कौन अधिक है ?

भगवान महावीर कहने लगे—गौतम ! सब से कम सिद्ध जीव है और सिद्ध जीवों से असिद्ध जीव अनन्त गुणा अधिक होते है।

मूल पाठ

*अहवा दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तंजहा—सइंदिया चेव अणिंदिया चेव।

---

* अथवा द्विविधा सर्वजीवा प्रज्ञप्ता । तद्यथा —सेन्द्रियाश्चैव अनिन्द्रियाश्चैव ।

सेन्द्रियो भदन्त ! कालत कियच्चिरं भवति ? गौतम ! सेन्द्रियो द्विविध प्रज्ञप्त अनादिको वा अपर्यवसित अनादिको वा सपर्यवसित ।

सइंदिए ण भंते ! कालतो केवचिरं होइ ?

गोयमा ! सइंदिए दुविहे पण्णत्ते—अणातीए वा अपज्जवसिए, अणाइए वा सपज्जवसिए । अणिंदिए सातीए वा अपज्जवसिए दोण्ह वि अंतरं नत्थि । सव्व-त्थोवा अणिंदिया, सइंदिया अणंतगुणा ।

अहवा दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता तंजहा—सकाइया चेव अकाइया चेव एवं चेव,एवं सजोगी चेव अजोगी चेव

अनिन्द्रिय सादिका वा अपर्यवसित । द्वयोरपि अन्तर नास्ति । सर्वस्तो का अनिन्द्रिया , सेन्द्रिया अनन्तगुणा ।

अथवा द्विविधा सर्वजीवा प्रज्ञप्ता तद्यथा—सकायिकाश्चैव, अकायिकाश्चैव । एव चैव एव सयोगिनश्चैव, अयोगिनश्चैव तथैव । एव सलेश्याश्चैव अलेश्याश्चैव सशरीराश्चैव अशरीराश्चैव । संस्थानम अन्तरम अल्पबहुत्वम यथा सेन्द्रियाणाम् ।

अथवा द्विविधा सर्वजीवा प्रज्ञप्ता । तद्यथा—सवेदकाश्चैव अवेदकाश्चैव ।

सवेदका भदन्त ! सव । गौतम ! सवेदक त्रिविध प्रज्ञप्त । तद्यथा—अनादिक अपर्यवसित , अनादिक सपर्यवसित , सादिक सपर्यवसित । तत्र य स सादिक सपर्यवसितस्त सो जघन्येन अन्तर्मुहूर्तम् उत्कर्षेण अनन्त काल यावत् क्षेत्रत अपार्ध पुद्गलपरावर्त देशोनम् ।

अवेदको भदन्त ! अवेदक इति कालत कियच्चिर भवति ? गौतम ! अवेदको द्विविध प्रज्ञप्त । तद्यथा—सादिको वा अपर्यवसित सादिको वा सपर्यवसित । तत्र य स सादिक सपर्यवसित स जघन्येन समयम उत्कर्षेण अन्तर्मुहूर्तम् ।

असिद्धत्व को छोड कर पुन कब असिद्ध बनते हैं ?

भगवान महावीर ने कहा—गौतम ! अनादि अनन्त असिद्ध जीव का अन्तर नहीं होता है। अर्थात् असिद्ध जीव असिद्धत्व को छोड कर (सिद्धत्व को प्राप्त कर के) पुन असिद्धत्व को कभी प्राप्त नहीं होते हैं। क्योंकि अनादि अनन्त होने के कारण वे असिद्धजीव असिद्धत्व का कभी परित्याग ही नहीं कर पाते हैं।

इसी प्रकार अनादि सान्त असिद्ध जीवों का भी अन्तर नहीं होता है। क्योंकि अनादि सान्त असिद्ध जीव असिद्धत्व का परित्याग कर के अर्थात सिद्धत्व को प्राप्त करके पुन असिद्धत्व को प्राप्त नहीं होते हैं सिद्धदशा को छोड कर असिद्धदशा मे नहीं आते हैं।

अनगार गौतम बोले— भदन्त ! इन सिद्ध और असिद्ध जीवों म कौन अल्प और कौन अधिक है ?

भगवान महावीर कहने लगे—गौतम ! सब स कम सिद्ध जीव हैं और सिद्ध जीवों से असिद्ध जीव अनन्त गुणा अधिक होते हैं।

मूल पाठ

*अहवा दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तंजहा— सइंदिया चेव अणिंदिया चेव।

---

* अथवा द्विविधा सर्वजीवा प्रज्ञप्ता। तद्यथा —सेन्द्रियाश्चैव अनिन्द्रियाश्चैव।

सेन्द्रियो भदन्त ! कालत कियच्चिरं भवति ? गौतम ! सेन्द्रियो द्विविध प्रज्ञप्त अनादिको वा अपर्यवसित अनादिको वा सपर्यवसित।

सइंदिए ण भंते ! कालतो केवचिरं होइ ?

गोयमा ! सइंदिए दुविहे पण्णत्ते—अणाईए वा अपज्जवसिए, अणाइए वा सपज्जवसिए । अणिंदिए सातीए वा अपज्जवसिए दोण्ह वि अंतरं नत्थि । सव्व-त्थोवा अणिंदिया, सइंदिया अणंतगुणा ।

अहवा दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता तंजहा—सकाइया चेव अकाइया चेव एवं चेव एवं सजोगी चेव अजोगी चेव

अनिन्द्रिय सादिका वा अपर्यवसित । द्वयोरपि अन्तरं नास्ति । सर्वस्तो का अनिन्द्रिया सेन्द्रिया अनन्तगुणा ।

अथवा द्विविधा सर्वजीवा प्रज्ञप्ता तद्यथा—सकायिकाश्चैव, अकायिकाश्चैव । एवं चैव एवं सयोगिनश्चैव, अयोगिनश्चैव तथैव । एवं सलेश्याश्चैव अलेश्याश्चैव सशरीराश्चैव अशरीराश्चैव । संस्थानम् अन्तरम् अल्पबहुत्वम् यथा सेन्द्रियाणाम् ।

अथवा द्विविधा सर्वजीवा प्रज्ञप्ता । तद्यथा—सवेदकाश्चैव अवेदकाश्चैव ।

सवेदका भदन्त ! सवे० । गौतम ! सवेदक त्रिविध प्रज्ञप्त । तद्यथा—अनादिक अपर्यवसित अनादिक सपर्यवसित, सादिक सपर्यवसित । तत्र य स सादिक सपर्यवसितस्त सो जघन्येन अन्तमुहूर्तम् उत्कर्षेण अनन्त काल यावत् क्षेत्रत अपार्ध पुद्गलपरावर्तं देशोनम् ।

अवेदको भदन्त ! अवेदक इति कालत कियच्चिर भवति ? गौतम ! अवेदका द्विविध प्रज्ञप्त । तद्यथा—सादिका वा अपर्यवसित सादिको वा सपर्यवसित । तत्र य स सादिक सपर्यवसित स समयम उत्कर्षेण अ तर्मुहूर्तम् ।

तत्व । एव सलेस्सा चेव, अलेस्सा चेव, ससरीरा चेव, असरीरा चेव, सचिट्ठण अंतर अप्पाबहुय जहा सइन्दियाण ।

अहवा दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तजहा—सवेदगा चेव अवेदगा चेव ।

सवेदए ण भंते ! सवे० ? गोयमा ! सवेयए तिविहे पण्णत्ते, तजहा—अणादीए अपज्जवसिते, अणादीए सपज्जवसिए, साइए सपज्जवसिए । तत्थ ण जे से साइए सपज्जवसिए से जह० अंतोमु० उक्को० अणंत कालं जाव खेत्तओ अवड्ढ पोग्गलपरियट्टं देसूण ।

अवेदए ण भंते ! अवेयए ति कालओ केवचिर होइ? गोयमा ! अवेद दुविहे पण्णत्ते तजहा—सातीए

सवेदकस्य भदन्त ! कियत्कालमन्तर भवति ? अनादिकस्य अपर्यवसितस्य नास्त्यन्तरम् । अनादिकस्य सपर्यवसितस्य नास्त्यन्तरम् । सादिकस्य सपर्यवसितस्य जघन्येन एक समयम् उत्कर्षेण अन्तर्मुहूर्तम् ।

अवेदकस्य भदन्त ! कियत्कालमन्तर भवति ? सादिकस्य अपर्यवसितस्य नास्त्यन्तरम् । सादिकस्य सपर्यवसितस्य जघन्येन अन्तर्मुहूर्तम् उत्कर्षेण अनन्त काल यावत् अपार्धं पुद्गलपरिवर्त देशोनम् । अल्पबहुत्वम्—सवेदकोऽवेदका सवेदका अनन्तगुणा । एव सकषायिणश्चैव अकषायिणश्चैव । यथा सवेदकस्तथैव भणितव्य ।

अथवा द्विविधा सर्वजीवा । सलेश्यादच अलेश्यादच । यथा असिद्धा, सिद्धा । सर्वस्तोका अलेश्या, सलेश्या अनन्तगुणा ।

ना अपज्जवसिए, साइए वा सपज्जवसिए तत्थ ण जे स सादिए सपज्जवसिए स जहण्णेण एक्क समय उक्को० अतोमुहुत्त ।

सवेयगस्स ण भते ! केवतिकाल अतर होइ ?

अणादियस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अतर, अणादि यस्स सपज्जवसियस्स नत्थि अतर सादीयस्स सपज्ज-वसियस्स जहण्णेण एक्क समय उक्कोसेण अतोमुहुत्त ।

अवेदगस्स ण भते ! केवतिय काल अतर होइ ?

सातीयस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अतर, सातीयस्स सपज्जवसियस्स जह० अतोमु० उक्कोसेण अणत काल जाव अवड्ढ पोग्गलपरियट्ट देसूण । अप्पाबहुग—सव्व त्थोवा अवेयगा, सवेयगा अणतगुणा । एव सकसाई चेव अकसाई चेव २ जहा सवेया तहेव भाणियव्व ।

अहवा दुविहा सव्वजीवा—सलेसा य अलेसा य जहा असिद्धा सिद्धा, सव्वत्थोवा—अलेसा, सलेसा अणतगुणा ।

संस्कृत—व्याख्या

अथवा द्विविधा सर्वजीवा प्रज्ञप्तास्तद्यथा—सेन्द्रियाश्च अनिन्द्रियाश्च तत्र सेन्द्रिया—ससारिण अनिन्द्रिया—सिद्धा । उपाधिभेदान्यद्यप्ययाय । एव सकायिकादिष्वपि भावनीय तत्र सेन्द्रियस्य कायस्थि तिरन्तर चासिद्धवक्तव्य अनिन्द्रियस्य सिद्धवत्

समनि यान्यमुपशमश्रेणिलाभो भवति ? यन्मुच्यते मध्यमनन्तुर्वनि तथा यह—पुनरीभाकार — नवस्मिन् जन्मनि उपशमश्रेणि धाप कर्थान्त जायत उपशमश्रेणिश्च तु भव येव नि सम तवमुत्त्मन्‍- यथैनान्तर्मुहूर्तश्वयतोऽनन्त वार समय कालप्राभ्यां निस्पयति- मनन्ता उत्सर्पिण्यवसर्पिण्य पार कालनो मागणा दशनाऽऽवद्गुणा परावर्त यथानम गताबन कालादूध्व पूर्वप्रतिपन्नादाप यणरव य मुक्यास नतया भणिप्रतिपत्तावनन्तरत्वगमावात् । घवन्ए ण भंते ! इत्यादि प्रश्नसूत्र पाठसिद्ध भगवानाह—गोयम ! ग्रवन्वा त्रिविध प्रज्ञप्तस्तद्यथा सादिको वा वयवसित [समयानन्तर] क्षीणवद सादिको वा मपयवसित —उपशान्तवत तत्र यो ऽसौ सादिसपयवसितःऽस्वन्त स च जघन्येन समय उपशमश्रेणि—प्रतिपन्नस्य व ।पशमसमयानन्तरऽपि मरण पुन मवत्कत्यापत्त उत्कर्षत ऽन्तमुहूर्तमुपवा नबन्धणिकाल तत ऊर्ध्वं श्रणी प्रतिपतन नियमत सवदत्त्वभावात । अनर प्रतिपिपादयिषु राह— सवेदस्स ण भंते ! इत्यादि प्रश्नसूत्र सुगम भगवानाह— गोयम ! ग्रनादिकस्यापयवसितस्य सवदकस्य नास्त्यन्तर अपयवसितत या सन्ना सद्भावापरित्यागात ग्रनादिकस्य सपयवसितस्यापि नास्त्यन्तर ग्रनादिसपयवसिता ह्यपान्तराल उपशमश्रेणिमप्रतिपद्य भाविनीणवेदा न च क्षीणवेदस्य पुन सवेदत्व प्रतिपाताभावात् सादिकस्य सपय वसितस्य सवदकस्य जघन्येन समयमन्तर, द्वितीयवारमुपशमश्रेणि प्रतिपन्नस्य व ।पशमसमयानन्तर कस्यापि मरणसम्भवात् उत्कर्षेणान्तमु हूर्त द्वितीय वारमुपशमश्रेणि प्रतिपन्नस्योपशान्तवेदस्य श्रेणिसमाप्तमध्य पुन सवदकत्वाभावात् । ग्रवदकसूत्र सादिकस्यापयवसितस्यावेदकस्य नास्त्यन्तर क्षीणवेदस्य पुन सवेदत्वाभावात् वदाना निमूलकापकषित त्वात् सादिकस्य सपयवसितस्य जघन्येनान्तमुहूर्त, उपशमश्रेणिसमाप्तौ सवदकत्व सति पुनरन्तमुहूर्तेनोपशमश्रेणिलाभतो ऽवेदकत्वोपपत्तेः उत्कर्ष

लाजन न वान अन ना उ सविष्णवसविष्य नासत स्वनोऽपाद्वपुद्गन परावम नाम गक्षारमुरक्षणि प्रतिपद्य तयाद्दवा भूत्वा ग्रजिसमाप्तौ नवन्वत सति पुनरेनावना नान श्र णिप्रतिपत्तावदक्ष वावत्त । प्रपरइत्वमाह— एगसि ण भते ! जीवा इत्यादि—पूववत्। प्रका रान्तरेण द्वविध्यमाह – ग्रहवा त्यादि ग्रथवा द्विविधा सवजीवा प्रज्ञप्तास्तद्यथा—सकषायिकाश्च ग्रकषायिकाश्च मह कपाया यषां यर्वा ते सकाषाया त एव सकषायिका प्राकृतवात् स्वार्थे इकप्रत्यय एव न विद्यन्त कषाया येषा ते ग्रकषाया २ एवाकषायिका । सम्प्रति कार्यस्थितिमाह— सकसाइस्स त्यादि, सकषायिकस्य त्रिविधस्यापि नविस्तरणा कायस्थितिरन्तर च यथा सवदकस्य, ग्रकषायिकस्य द्विविध भस्यापि कायस्थितिरन्तर च यथा वेदकस्य तच्चवम् — सकसाइए ण भत ! सकसाइय ति कालता केवचिर होइ ? गायमा ! सकसाइए तिविहे पन्नत्त तजहा—ग्रणाइए वा ग्रपज्जवसिए ग्रणाइए वा सपज्जवसिए साइए वा सपज्जवसिए तत्थ जे से साइए सपज्जवसिए स जहण्णण ग्रतामुहुत्त उक्कासण ग्रणत काल—ग्रणता ग्रासप्पिणिउस्सप्पिणीग्रो कालतो खेत्तग्रो ग्रवड्ढपागगलपरियट्ट दसूण ग्रकसाइए ण भत ! ग्रकसाइय त्ति कालग्रो केवचिर होइ ? गायमा ! ग्रकसाइए— दुविहे पण्णत्ते तजहा—साइए वा ग्रपज्जवसिए साइए वा सपज्जवसिए तत्थ ण जे साइए सपज्जवसिए स जहण्णण एक्क समय उक्कोसेण ग्रतामुहुत्त । सकसाइयस्स ण भत ! ग्रतर कालता केवचिर होइ ? गायमा ! ग्रणाइयस्स ग्रपज्जवसियस्स नत्थि ग्रतर, ग्रणाइयस्स सपज्जवसियस्स नत्थि ग्रतर साइयस्स सपज्ज वसियस्स जहण्णण एक्क समय उक्कासेण ग्रतोमुहुत्त ग्रकसाइयस्स ण भत ! केवइय काल ग्रतर होइ ? साइयस्स

अपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं साइयस्स सपज्जवसियस्स जहण्णेणं अन्तोमुहुत्तं उक्कोसेणं अनन्तं कालं जाव अवड्ढं पोग्गलपरियट्टं देसूणं मिति अस्य व्याख्या पूर्ववत्। अल्पबहुत्वमाह- एएसि भंते ! जीवाणं सकसाइयाणं मित्यादि प्राग्वत्। प्रकारान्तरेण द्वैविध्यमाह।

हिन्दी-भावार्थ

अथवा सर्वजीव दो प्रकार के कहे गये हैं। जैसे कि सेन्द्रिय और अनिन्द्रिय।

अनगार गौतम बोले—भगवन्! सेन्द्रिय जीव काल से कब तक रहता है?

भगवान महावीर ने कहा—गौतम! सेन्द्रिय जीव दो प्रकार के होते हैं—१ अनादि अनन्त और २ अनादि सान्त। किन्तु अनिन्द्रिय (सिद्ध) जीव सादि अनन्त होते हैं। दोनों प्रकार के जीवों में अन्तर नहीं होता है। सब से कम अनिन्द्रिय जीव होते हैं। इन की अपेक्षा सेन्द्रिय जीव अनन्त गुणा अधिक होते हैं।

अथवा सर्वजीव दो प्रकार के कहे गए हैं। जैसे कि सकायिक पृथ्वी आदि काय वाले अकायिक (काय से रहित सिद्ध)। इस प्रकार सयोगी (मन वचन काया के व्यापार वाले) और अयोगी (सिद्ध), सवेद (स्त्री वेद आदि वेदों वाले) और अवेद (वेदों से रहित सिद्ध) सशरीर (औदारिक आदि शरीर वाले) और अशरीर (शरीर रहित सिद्ध)।

सकायिक आदि सभी जीवों का संस्थान (स्थिति) अन्तर और अल्पबहुत्व सेन्द्रिय जीवों के समान

चाहिए।

अथवा सवजीव दो प्रकार के कहे गए हैं। जसेकि सवदक (स्त्री आदि वद वाले) और अवेदक (वदरहित)।

अनगार गौतम वाले–भगवन! सवदक जीव कितन प्रकार क होन हैं?

भगवान महावीर न कहा—गौतम! सवदक जीव तीन प्रकार के होते हैं। जसकि—१–अनादि अनन्त २—अनादि-सान्त ३—सादि-सान्त। इन मे से जो सादि-सान्त जीव है, उन की अवस्थिति जघन्य अन्तमुहूत और उत्कृष्ट अनन्त काल तक है। यावत क्षत्र से *देशान अपाध पुद्गल परिवतन तक है।

अनगार गौतम बाले–भदन्त! अवेदक जीव काल की अपक्षा से कब तक रहता है?

भगवान महावीर न कहा–गौतम! अवेदक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं। जसकि–१–सादि अनन्त और २ सादि सान्त। इन में से जो सादि सान्त है उनकी जघन्य स्थिति एक समय और उत्कृष्ट अन्तमुहूर्त की होती है।

अनगार गौतम वाले—भगवन्! सवेदक जीव का अन्तर कितना समय का होता है?

भगवान महावीर ने कहा—गौतम! अनादि अनन्त तथा अनादि-सान्त सवदक जीव का अन्तर नहीं होता है। किंतु सादि-सान्त सवेदक जीव का अन्तर जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अन्तमुहूर्त का होता है।

---

*पुद्गलपरिवतन के अथ के लिए देखो श्री जनसिद्धान्त बोलसग्रह भाग ३, पृष्ठ १३८।

अनगार गौतम बोले—भगवन् ! अवेदक जीव का अन्तर कितने समय का होता है ?

भगवान महावीर ने कहा—गौतम ! आदि अनन्त अवेदक जीव का अन्तर नहीं होता है, किन्तु सादि-सान्त अवेदक जीव का अन्तर जघन्य अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्त काल का होता है । यावत अन्त मे देशोन अर्धपुद्गलपरावर्तन का होता है ।

सवेदक और अवेदक जीवों का अल्प बहुत्व इस प्रकार है—सब से कम अवेदक जीव हैं, और सवेदक इन से अनन्त गुणा अधिक हैं । सकषायी और अकषायी जीवों का अन्तर सवेदक जीवों के समान समझना चाहिए ।

अथवा सब जीव दो प्रकार के कहे गए हैं । जैसे कि—सलेश्य (कृष्ण आदि लेश्याओं वाले) और अलेश्य (लेश्याओं से रहित) । सब से कम अलेश्य हैं सलेश्य इन से अनन्त गुणा अधिक होते हैं ।

मूल पाठ

*णाणी चेव अण्णाणी चेव । णाणी ण भंते ! कालओ० ? २ दुविहे पण्णत्ते—सातीए वा अपज्जवसिए, सादीए वा सपज्जवसिए । तत्थ ण जे से सादीए सपज्ज

* ज्ञानिनश्चैव अज्ञानिनश्चैव । ज्ञानी भदन्त ! कालत० ? २ द्विविध प्रज्ञप्त । सादिको वा अपर्यवसित , सादिको वा सपर्यवसित । तत्र य सादिक सपर्यवसित स उत्कर्षेण षट्षष्टि-सागरोपमानि सातिरेकाणि ।

वसिते, स जहण्णण अतोमुहुत्त उक्कोसेण छावट्ठिसाग-रोवमाइ सातिरेगाइ अण्णाणी जहा सवेदया । णाणिस्स अतर—जहण्णेण अतोमुहुत्त, उक्कोसेण अणत काल, अवड्ढ पोग्गलपरियट्ट देसूण । अण्णाणियस्स दोण्ह वि आदिल्लाण णत्थि अतर, सादियस्स सपज्ज वसियस्स जहण्णेण अतोमुहुत्त, उक्कोसेण छावट्ठि सागरोवमाइ साइरेगाइ । अप्पाबहु सव्वत्थोवा णाणी अण्णाणी अणतगुणा ।

अहवा दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता—सागारोवउत्ता य अणागारोवउत्ता य, सचिट्ठणा अतर च जहण्णेण उक्कोसेण वि अतोमुहुत्त अप्पाबहु सागारोवउत्ता सखे० ।

संस्कृत—व्याख्या

अहवा इत्यादि अथवा द्विविधा सर्वजीवा प्रज्ञप्तास्तद्यथा—सज्ञ्याश्च

सातिरेकाणि । अन्तरम्—जघन्येन अन्तर्मुहूर्तम् उत्कर्षेण अनन्त कालम् अपार्ध पुद्गलपरिवर्तं देशोनम् । अज्ञानिना द्वयोरपि आद्ययोर्नास्त्यन्तरम् । सादिकस्य सपर्यवसितस्य जघन्येन अन्तर्मुहूर्तम् उत्कर्षेण षट्षष्टि सागरोपमाणि सातिरेकाणि । अल्पबहुत्वम्—सर्वस्तोका ज्ञानिन अज्ञानिनोऽनन्तगुणा ।

अथवा द्विविधा सर्वजीवा प्रज्ञप्ता । साकारोपयुक्ताश्च अनाकारोपयुक्ताश्च । सस्थानम् अन्तर च जघन्येन उत्कर्षेणापि अन्तर्मुहूर्तम् । अल्पबहुत्वम्—साकारो० सख्ये० ।

प्रत्ययादव, तत्र सत्वेऽप्यस्य कायस्थितिनिरन्तर चामिद्वस्यैव प्रत्येय च कायस्थितिनिरन्तर च यथा सिद्धस्य । अल्पबहुत्व प्राग्वत् ।

भूय प्रकारान्तरेण द्विविध्यमाह—अ वे त्याति अथवा द्विविधा सर्वजीवा प्रज्ञप्तास्तद्यथा—ज्ञानिनश्च अज्ञानिनश्च ज्ञानमेषामस्तीति ज्ञानिन न ज्ञानिनोऽज्ञानिन मिथ्याज्ञाना इत्यर्थ ।

सम्प्रति कायस्थितिमाह—'णाणी ण भिल्यादि'—प्रश्नसूत्र सुगमम् । भगवानाह—गौतम ! ज्ञानी द्विविध प्रज्ञप्तस्तद्यथा—सादिको वा अपर्यवसित स च केवली केवलज्ञानस्य साद्यपर्यवसित वात सादिको वा सपर्यवसिता मतिज्ञानादिमान मतिज्ञानादीना छाद्मस्थिकतया सादि सपर्यवसितत्वात् । तत्थ ण' मित्यादि तत्र योऽसौ सादिक सपर्यवसित स जघन्येनान्तर्मुहूर्त सम्यक्त्वस्य जघन्यत एतावन्मात्रकालत्वात सम्यक्त्वतश्च ज्ञानित्वात् यदोक्तम्—सम्यग्दृष्टर्ज्ञान मिथ्यादृष्टेर्विपर्यास इति उत्कर्षत षट्षष्टि सागरोपमाणि सातिरेकाणि सम्यग्दर्शनका लस्याप्युत्कर्षत एतावन्मात्रत्वात् अप्रतिपतितसम्यक्त्वस्य विजयादिगमन श्रवणात्, तथा च भाष्यम्—

दो वार विजयाइसु गयस्स तिन्निऽच्चुए अहव ताइ ।
अइरेग नर-भविय नाणाजीवाण सव्वद्धा* ॥ १ ॥

अण्णाणी ण भते! इत्यादि प्रश्नसूत्र सुगमम भगवानाह—गौतम ! अज्ञानी त्रिविध प्रज्ञप्तस्तद्यथा—अनादिको वाऽपर्यवसित अनादिका वा सपर्यवसित तत्रानाद्यपर्यवसिता या न जातुचिदपि सिद्धि गन्ता अनादिसपर्यवसितो योऽनादिमिथ्यादृष्टि सम्यक्त्वमासाद्याप्रतिपतित सम्यक्त्व एव क्षपकश्रेणि प्रतिपत्स्यते सादिसपर्यवसित सम्यग्दृष्टिर्भूत्वा जातमिथ्यादृष्टि स जघन्येनान्तर्मुहूर्त सम्यक्त्वात् प्रतिपत्य पुनरन्त

---

*द्वौ वारौ विजयादिषु गतस्य अथवा त्रीनच्युत तानि ।
अतिरेका नर भविका नानाजीवानां सर्वाद्धा ॥ १ ॥

वमिते, म जहण्णण अतोमुहुत्त उक्कोसेण छावट्ठिभाग रोवमाइ सातिरेगाइ जण्णाणी जहा सवेदया। णाणिस्स अतर—जहण्णण अतामुहुत्त, उक्कोसेण अणत काल, अवड्ढ पोग्गलपरियट्ट देसूण। अण्णाणियस्स दोण्ह वि आदिल्लाण णत्थि अतर, सादियस्स सपज्जवसियस्स जहण्णण अतामुहुत्त, उक्कोसेण छावट्ठि सागरोवमाइ सातिरेगाइ। अप्पाबहु सव्वत्थोवा णाणी अण्णाणी अणतगुणा।

अहवा दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता—सागरोवउत्ता य अणागारोवउत्ता य, सचिट्ठणा अतर च जहण्णण उक्कोसेण वि अतामुहुत्त अप्पाबहु सागारोवउत्ता सखे०।

सस्कृत—व्याख्या

अहवेत्यादि अथवा द्विविधा सवजीवा प्रज्ञप्तास्तद्यथा—सलेश्याश्च

ज्ञानिनोऽन्तरम्—जघन्येन अन्तमुहूतम् उत्कर्षेण अनन्त कालम् अपार्ध पुद्गलपरिवर्त देशोनम। अज्ञानिनो द्वयोरपि आद्ययोर्नास्त्यन्तरम्। सादिकस्य सपर्यवसितस्य जघन्येन अन्तमुहूर्तम उत्कर्षेण षट्षष्टि सागरोपमानि सातिरेकानि। अल्पबहुत्वम्—सवस्तोका ज्ञानिन अज्ञानिनोऽनन्तगुणा।

अथवा द्विविधा सवजीवा प्रज्ञप्ता। साकारोपयुक्ताश्च अनाकारोपयुक्ताश्च। सस्थानम् अन्तर च जघन्येन उत्कर्षेणापि अन्तमुहूतम्। अल्पबहुत्वम्—साकारो० सख्य।

प्याश्च, तत्र सः यस्य कायस्थितिरन्तर चासिद्धस्येव यस्य कायस्थितिरन्तर । यथा सिद्धस्य । अन्यत्र व प्राग्वत् ।

अथ प्रकारान्तरेण त्रैविध्यमाह— ग्र व त्यादि अथवा त्रिविधा सर्वजीवा प्रज्ञप्तास्तद्यथा—ज्ञानिनश्च अज्ञानिनश्च ज्ञानमज्ञानमस्तीति ज्ञानिन न ज्ञानिनोऽज्ञानिन मिथ्याज्ञाना इत्यर्थ ।

सम्प्रति कायस्थितिमाह —'णाणी णं भंते'—प्रश्नसूत्रं सुगमम । भगवानाह—गौतम ! ज्ञानी द्विविध प्रज्ञप्तस्तद्यथा— सादिको वा अपर्यवसित स च केवली केवलज्ञानस्य साद्यपर्यवसितत्वात् सादिको वा सपर्यवसित मतिज्ञानादिमान मतिज्ञानादीनां छाद्मस्थिकतया सादिसपर्यवसितत्वात् । तत्थ णं जे से इत्यादि तत्र योऽसौ सादिक सपर्यवसित स जघन्येनान्तर्मुहूर्त्त सम्यक्त्वस्य जघन्यत एतावन्मात्रकालत्वात सम्यक्त्वरहितस्य ज्ञानित्वात् यथोक्तम्—सम्यग्दृष्टेर्ज्ञानं मिथ्यादृष्टेर्विपर्यास इति उत्कर्षेण षट्षष्टि सागरोपमाणि सातिरेकाणि सम्यग्दर्शनस्याप्युत्कर्षत एतावन्मात्रत्वात् अप्रतिपतितसम्यक्त्वस्य विजयादिगमनश्रवणात् तथा च भाष्यम्—

दो वारे विजयाइसु गयस्स तिन्निऽच्चुए अहव ताइ ।
अइरेग नर-भविय नाणाजीवाण सव्वद्धा* ॥ १ ॥

अण्णाणी णं भंते ! इत्यादि प्रश्नसूत्र सुगमम भगवानाह—गौतम ! अज्ञानी त्रिविध प्रज्ञप्तस्तद्यथा—अनादिको वाऽपर्यवसित अनादिको वा सपर्यवसित तत्रानाद्यपर्यवसितो यो न जातुचिदपि सिद्धि गन्ता अनादिसपर्यवसितो योऽनादिमिथ्यादृष्टि सम्यक्त्वमासाद्याप्रतिपतितसम्यक्त्व एव क्षपकश्रेणि प्रतिपत्स्यते सादिसपर्यवसित सम्यग्दृष्टिर्भूत्वा जातमिथ्यादृष्टि स जघन्येनान्तर्मुहूर्त्त सम्यक्त्वात् प्रतिपत्य पुनरन्त

*द्वौ वारौ विजयादिषु गतस्य अथवा त्रीनच्युते तानि ।
अतिरेका नर भविकं नानाजीवानां सर्वाद्धा ॥ १ ॥

मुहूर्तेन कस्यापि सम्यग्ज्ञानावाप्ति—सम्भवात् उत्कर्षेणानन्तं कालं अनन्ता उत्सर्पिण्यवसर्पिण्य कालतः क्षेत्रतोऽपार्द्ध पुद्गलपरावर्त्तं देशोनम् । आह—केवल नर प्रतिपात्यति— णाणिस्स ण भंते !' इत्यादि ज्ञानिनो भदन्त ! अन्तरं कालत कियच्चिरं भवति ? भगवानाह— गौतम ! साधिकस्यापर्यवसितस्य नास्त्यन्तरम् अपर्यवसितत्वेन सदा तद्भावापरित्यागात् सादिकस्य सपर्यवसितस्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्तं, एतावतः मिथ्यादर्शनकालेन व्यवधाने भूयोऽपि ज्ञानाभावात् उत्कर्षेण अनन्तं कालं अनन्ता उत्सर्पिण्यवसर्पिण्य कालतः क्षेत्रतोऽपार्द्ध पुद्गलपरावर्त्तं देशोनं सम्यग्दृष्टेः सम्यक्त्वात्प्रतिपतितस्योत्कर्षतः एतावन्तं कालं मिथ्यात्वमनुभूय तदनन्तरमवश्यं सम्यक्त्वासादनात्— अण्णाणिस्स ण भंते !' इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं भगवानाह—गौतम ! अनाद्यपर्यवसितस्य नास्त्यन्तरम् अपर्यवसितत्वादेव अनादिसपर्यवसितस्यापि नास्त्यन्तरं अवाप्तकेवलज्ञानस्य प्रतिपाताभावात् । सादिसपर्यवसितस्य जघन्येनान्तर्मुहूर्तं जघन्यस्य सम्यग्दर्शनकालस्यैतावन्मात्रत्वात् उत्कर्षतः षट्षष्टिः सागरोपमाणि सातिरेकाणि एतावतो पि कालादूर्ध्वं सम्यग्दर्शनप्रतिपाते सत्यज्ञानभावात् । अल्पबहुत्वसूत्रं प्राग्वत् । प्रकारान्तरेण द्वैविध्यमाह अहवेत्यादि अथवा द्विविधाः सर्वजीवाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—साकारोपयुक्ताश्च अनाकारोपयुक्ताश्च । सम्प्रति कायस्थितिमाह सागारोवउत्ता णं भंते! इह छद्मस्था एव सर्वजीवा विवक्षिता न केवलिनोऽपि विचित्रत्वात् सूत्रगतेः इति द्वयानामपि कायस्थित्यन्तरे चकसामयिकोऽप्युच्यते । अल्पबहुत्व—चिन्तायां सर्वस्तोका अनाकारोपयुक्ताः अनाकारोपयोगस्य स्तोककालतया पृच्छासमये सदा स्तोकानामेवावाप्यमानत्वात् । साकारोपयुक्ता संख्येयगुणाः अनाकारोपयोगाद्धातः साकारोपयोगाद्धायाः संख्येयगुणत्वात् ।

हिन्दी-भावार्थ

अथवा सवजीव दो प्रकार के कहे गए हैं। जैसे कि नानी और अनानी।

अनगार गौतम बोले—भगवन् ! नानी जीव कब तक रहते है ?

भगवान महावीर ने कहा—गौतम ! नानी जीव दो प्रकार के होते है। जैसे कि—सादि अनन्त और सादि सान्त। इन म जो जीव सादि सान्त होते हैं उनकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट कुछ अधिक ६६ सागरोपम की होती है। अज्ञानी जीवों का सवेदक जीवो के समान समझना चाहिए। नानी जीवो का अन्तर जघन्य अन्तमुहूर्त उत्कृष्ट अनन्तकाल तक होता है। अनन्तकाल के भी अनन्त भेद होते हैं किन्तु प्रस्तुत म उस अनन्त का ग्रहण करना चाहिए जिस म कुछ कम अपाध पुदगल परावतन जितना समय लग जाता है। पहले दो प्रकार के अनानी जीवो का अन्तर नहीं होता है परन्तु सादि सान्त अनानी जीवो का जघन्य अन्तर अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ अधिक ६६ सागरोपम तक होता है। इन जीवों का अल्पबहुत्व इस प्रकार है—

सब से कम ज्ञानी जीव है। इन की अपेक्षा अनानी जीव अनन्तगुणा अधिक है।

अथवा सवजीव दो प्रकार के कहे गए हैं। जैसे कि—

१—साकारोपयुक्त (नानोपयोग वाले) २-अनाकारोपयुक्त (दर्शनोपयोग वाले)। टीकाकार के मतानुसार यहां सवजीव शब्द से छद्मस्थ जीवो का ही ग्रहण करना सूत्रकार को इष्ट है। उनके कथनानुसार यहां केवली और ...

का ग्रहण नहीं करना चाहिए। इन दोनों प्रकार के ...

असंख्यातकाल और अनन्तकाल जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। इन का अल्पबहुत्व इस प्रकार है—

सब से कम अनाकारोपयोग वाले जीव हैं और साकारोपयोग वाले जीव इन की अपेक्षा संख्येय गुणा अधिक है।

मूल पाठ

अहवा दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तंजहा—आहारगा चेव अणाहारगा चेव।

आहारए णं भंते ! जाव केवचिरं होति ?

गोयमा ! आहारए दुविहे पण्णत्ते, तंजहा—छउमत्थआहारए य केवलिआहारए य।

छउमत्थआहारए णं जाव केवचिरं होति ?

गोयमा ! जहण्णेणं खुड्डागं भवग्गहणं दुसमयऊणं, उक्को० असंखेज्जं कालं जाव काल० खेत्तओ अंगुलस्स

---

* अथवा द्विविधाः सर्वजीवाः प्रज्ञप्ताः। तद्यथा—आहारकाश्चैव, अनाहारकाश्चैव। आहारको भदन्त ! यावत् कियच्चिरं भवति ? गौतम ! आहारको द्विविधः प्रज्ञप्तः। तद्यथा—छद्मस्थाहारकश्च, केवलि आहारकश्च। छद्मस्थाहारको यावत् कियच्चिरं भवति ? गौतम ! जघन्येन क्षुल्लकं भवग्रहणं द्विसमयोनम्, उत्कर्षेण असंख्येयकालं यावत् काल० क्षेत्रतोऽङ्गुलस्य असंख्येयभागम्। केवलि आहारको यावत् कियच्चिरं भवति ? गौतम ! जघन्येन अन्तर्मुहूर्तम्, उत्कर्षेण देशोना पूर्वकोटिः। अनाहारको भदन्त ! कियच्चिरं० ? गौतम ! अनाहारको द्विविधः प्रज्ञप्तः। तद्यथा—छद्मस्थानाहारकश्च केवलि अनाहारकश्च।

असंखेज्जतिभाग।

केवलिआहारए ण जाव केवचिर होइ ?

गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्त उक्कोसेण देसूणा पुव्वकोडी।

अणाहारए ण भंते ! केवचिर० ?

छद्मस्थानाहारको यावत् कियच्चिर भवति०? गौतम ! जघन्येन एक समयम्, उत्कर्षेण द्वौ समयौ । केवलि अनाहारको द्विविध प्रज्ञप्त तद्यथा—सिद्धकेवलि-अनाहारकश्च, भवस्थकेवलि अनाहारकश्च । सिद्ध केवलि अनाहारको भदन्त ! कालत कियच्चिर भवति ? सादिकोऽपर्यवसित । भवस्थकेवलि अनाहारको भदन्त ! कतिविध प्रज्ञप्त ? भवस्थ केवलिमनाहारका द्विविध प्रज्ञप्त—सयोगिभवस्थकेवलि अनाहारकश्च अयोगि भवस्थकेवलि अनाहारकश्च । सयोगी भवस्थकेवलि अनाहारको भदन्त ! कालत कियच्चिर०? अजघन्यानुत्कर्षेण त्रीन् समयान्। अयोगिभवस्थकेवलि० जघन्येन अन्तमुहूर्तम् उत्कर्षेण अन्तर्मुहूर्तम् । छद्मस्थाहारकस्य कियन्त कालमन्तरम० ? गौतम ! जघन्येन एक समयम् उत्कर्षेण द्वौ समयौ । केवलि आहारकस्य अन्तरम्—अजघन्यानुत्कर्षेण त्रीन् समयान् । छद्मस्थानाहारकस्यान्तरम्—जघन्येन क्षुल्लक भवग्रहण द्विसमयोनम् उत्कर्षेण असख्येय काल यावद् अगुलस्यासख्येयभागम् ।

सिद्ध-केवलि अनाहारकस्य सादिकस्य अपर्यवसितस्य नास्त्यन्तर सयोगिभवस्थ-केवलि-अनाहारकस्य जघन्येन अन्तमुहूर्तम्, उत्कर्षेणापि । अयोगिभवस्थकेवलि अनाहारकस्य नास्त्यन्तरम् । एतेषा भदन्त ! आहारकाणामनाहारकाणाञ्च कतरे कतरेभ्योऽल्पा बहव ? गौतम ! सर्वस्तोका अनाहारका, आहारका असख्येया ।

गोयमा ! अणाहारए दुविहे पण्णत्ते, तंजहा—छउमत्थअणाहारए य केवलिअणाहारए य।

छउमत्थअणाहारए णं जाव केवचिरं होति ?

गोयमा ? जहण्णेण एक्कं समयं उक्कोस्सेण दो समया। केवलिअणाहारए दुविहे पण्णत्ते, तंजहा—सिद्ध—केवलिअणाहारए य भवत्थकेवलिअणाहारए य।

सिद्ध—केवलि अणाहारए णं भंते ! कालओ केवचिरं होति ? सातिए अपज्जवसिए।

भवत्थकेवलि-अणाहारए णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?

भवत्थकेवलि-अणाहारए दुविहे पण्णत्ते—सजोगिभवत्थकेवलिअणाहारए य अजोगिभवत्थकेवलिअणाहारए य।

सजोगिभवत्थकेवलिअणाहारए णं भंते ! कालओ केवचिरं होति ?,

अजहण्णमणुक्कोसेण तिण्णि समया। अजोगिभवत्थकेवलिअणाहारए जह० अंतो०, उक्को० अंतोमुहुत्तं।

छउमत्थआहारगस्स केवलियं कालं अंतरं० ?,

गोयमा ! जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्को० दो समया। केवलिआहारगस्स अंतरं—अजहण्णमणुक्कोसेण तिण्णि समया। छउमत्थअणाहारगस्स अंतरं

जहण्णेणं खुड्डागभवग्गहणं दुसमयऊणं उक्को० असंखेज्ज काल जाव अगुलस्स असंखेज्जतिभाग । सिद्धकेवलिअ-णाहारगस्स सातीयस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अंतर । सजोगिभवत्थकेवलिअणाहारगस्स जह० अंतो० उक्को-सेण वि, अजोगिभवत्थकेवलिअणाहारगस्स णत्थि अंतर ।

एएसि ण भंते ! आहारगाण अणाहारगाण य कयरे २ हिंतो अप्पाबहु० ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा अणाहारगा, आहारगा असंखेज्जा ।

संस्कृत—व्याख्या

अद्व स्थानि अथवा द्विविधा सर्वजीवा प्रज्ञप्तास्तद्यथा—आहारकाश्च अनाहारकाश्च । अधुना कायस्थितिमाह— आहारगे ण भंते ! इत्यादि । प्रश्नसूत्र सुगम भगवानाह—गौतम ! आहारको द्विविध प्रज्ञप्तस्तद्यथा-छद्मस्थाहारक केवल्याहारक तत्र छद्मस्थाहारको जघन्येन क्षुल्लकभवग्रहण द्विसमयोन एतच्च जघन्याधिकाराद्विग्रहेणागत्य क्षुल्लकभवग्रहणवत्सूत्पादे परिभावनीय, तत्र यद्यपि नाम लोकान्तनिष्कुटादावस्थाने चतु सामायिकी पञ्चसामयिकी च विग्रह-गतिर्भवति तथाऽपि बाहुल्येन त्रिसामयिकयेवेति तामेवाधिकृत्य सूत्र मिदमुक्तम ।

इत्थमवान्येषामपि पूर्वाचार्याणां प्रवनिदर्शनात् उक्तञ्च—'एक द्वौ वा आहारक' (तत्त्वा० २ सू० ३१)

इति त्रिसामयिकया च विग्रहगत्यावाप्तौ द्वौ समयावित्याह किं इति ताभ्यां हानमुक्तौ उत्कर्षतोऽसङ्ख्येय-कालम् असङ्ख्येया उत्सर्पिण्य-वसर्पिण्य कालत क्षेत्रतोऽङ्गुलस्यासङ्ख्येयो भाग, किमुक्त भवति?—अङ्गुलमात्रक्षेत्रादङ्गुलासङ्ख्येयभागे यावन्त आकाशप्रदेशास्तावत प्रतिसमयमेकैकप्रदेशापहारे यावता कालेन निर्लेपा भवन्ति तावत्य उत्सर्पिण्यवसर्पिण्य इति तावन्त हि कालमविग्रहेणोत्पाद्यते अवि ग्रहोत्पत्तौ च सततमाहार । केवल्याहारकप्रश्नसूत्र पाठसिद्ध भगवानाह—गौतम! जघन्येनान्तर्मुहूर्त्त स चान्तकृत् केवली प्रतिपत्तव्य उत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी सा च पूर्वकोट्यायुषा नववर्षादारभ्योत्पन्न केवलज्ञानस्य परिभावनीया । अनाहारकविषय सूत्रमाह— अनाहारए ण भंते ! इत्यादि प्रश्नसूत्र सुगमम् भगवानाह—गौतम ! अनाहारको द्विविध प्रज्ञप्त —छद्मस्थोऽनाहारक केवल्यनाहारकश्च । छद्मस्थाना हारकप्रश्नसूत्र सुगमम । भगवानाह—गौतम ! जघन्यत एक समय जघन्याधिकारान्द्विसामयिकीं विग्रहगतिमपेक्ष्यतदवसातव्य उत्कर्षतो द्वौ समयौ त्रिसामयिक्या एव विग्रहगतेर्बाहुल्येनाश्रयणात् । आह च चूर्णिकृत्—यद्यपि भगवत्या चतु-सामयिकोऽनाहारक उक्तस्तथाप्यत्र नाङ्गीक्रियते कादाचित्कोऽसौ भावो येन बाहुल्यमेवाङ्गीक्रियते, बाहुल्याच्च समयद्वयमेव' ति । केवल्यनाहारकसूत्र पाठसिद्ध, भगवानाह—गौतम ! केवल्यनाहारको द्विविध प्रज्ञप्तस्तद्यथा भवस्थकेवल्यनाहारक सिद्धकेवल्यनाहारक । सिद्धकेवलिअणाहारए ण भंते ! इत्यादि प्रश्न-सूत्र सुगमम् । भगवानाह—गौतम ! सादिकापर्यवसित , सिद्धस्य साद्यपर्यवसिततयाऽनाहारकत्वस्यापि तद्विशिष्टस्य तथाभावात् । भवत्थकेवलि-अणाहारए ण भंते! इत्यादि प्रश्न सूत्र सुगमम् भगवानाह—गौतम ! भवस्थकेवल्यनाहारको द्विविध प्रज्ञप्त —सयोगिभवस्थकेवल्यनाहारको-ऽयोगिभवस्थकेवल्यनाहारकश्च तत्रायोगिभवस्थकेवल्यनाहारकप्रश्नसूत्र

ग्रहेणोत्पत्त्यसम्भवात् ततश्चरमस्थानाद्वारकस्य जघन्येव उत्कृष्टश्चनाव द्नन्तरमिति । अथ स्थान २ क्षुल्लकभवग्रहणमित्युक्त तत्र क्षुल्लकभव ग्रहणमिति क शब्दार्थ ? उच्यते क्षुल्ल लघुस्तोकमित्यकोर्थ , क्षुल्लभव क्षुल्लभवम्-एकायुष्कसवेदनकालो भवस्तस्य ग्रहण-सव एव भवग्रहण, क्षुल्लक च तद् भवग्रहण च क्षुल्लकभवग्रहण तच्चावलिकानादिषन्यमान षट्पञ्चाशदधिकमावलिकाशतद्वयम् अथैकस्मिन् प्राणप्राण कियन्ति क्षुल्लकभवग्रहणानि भवन्ति ? उच्यते—किञ्चित्समधिकानि सप्तदश । कथमिति चदुच्यन्-इह मुहूर्तमध्ये सकलजन्तुषया पञ्चषष्टि सहस्राणि पञ्चशतानि षट्त्रिंशानि क्षुल्लकभवग्रहणानां भवन्ति यत उक्त चूर्णौ-

पण्णट्ठिसहस्साइ पचेव सया हवति छत्तीसा ।
खुड्डागभवग्गहणा हवति अतोमुहुत्तमि ॥१॥

प्राणप्राणाश्च मुहूर्त्त त्राणि सहस्राणि सप्तशतानि त्रिसप्तत्यधिकानि उक्तञ्च— तिन्नि सहस्सा सत्त य सयाइ तेवत्तरिं च उस्सासा ।
एस मुहुत्तो भणिओ सव्वेहिं अणतनाणीहिं ॥१॥

ततोत्र त्रैराशिककर्मावतार यदि त्रिसप्तत्यधिकसप्तशतोत्तरत्रिभि सहस्र रुच्छ्वासाना पञ्चषष्टि सहस्राणि पञ्चशतानि षट्त्रिंशानि क्षुल्लक भवग्रहणानां भवन्ति तत एकनोच्छ्वासेन कि लभामहे? राशित्रयस्थापना- ३७७३।६५५३६।१। अत्रान्त्यराशिना एकरूपलक्षणेन मध्यराशिगुणनाज्जात स तावानेव एकेन गुणित तदेव भवती'ति न्यायात् तत आद्येन राशिना भागहरण लब्धा सप्तदश क्षुल्लकभवा शेषास्त्वशतिरुष्टन्ति, तत्र त्रयोदश शतानि पञ्चनवत्यधिकानि उक्तञ्च—

सत्तरस भवग्गहणा खुड्डाण भवति आणुपाणमि ।
तेरस चेव सयाइ पचाणइ चेव असाण ॥१॥

अथतावद्भिरशै कियत्य आवलिका लभ्यन्ते ? उच्यते, समधिकत्रिनवति । तथाहि—षट्पञ्चाशदधिकेन शतद्वयेनावलिकानां त्रयोदश शतानि पञ्चनवतानि गुण्यन्ते जातानि त्रीणि लक्षाणि सप्तपञ्चाशत्सहस्राणि शतमेक विंशत्यधिकं ३५७१२०, छेदराशि स

एवं ३७७३ लब्धा चतुर्नवतिरावलिका शेषास्त्वंशा भवन्तिकाधास्ति-
ष्ठन्ति चतुर्विंशति शतानि अष्टपञ्चाशानि छ्द स एव २४५८/३७७३
एवं यश एकस्मिन्प्राण आवलिका सङ्ख्यातुमिष्यते तदा सप्तदश
शम्या पटपञ्चाशदधिकाभ्यां शताभ्यां गुण्यते गुणयित्वा
श्रोपरितनाश्चतुर्नवतिरावलिका प्रक्षिप्यते तत आवलिकाना चतुश्चत्वा
रिंशत् शतानि—षट् चत्वारिंशानि भवन्ति उक्तञ्च—

एवन्त्रा उ आणुपाणू चायालास सया उ छायाला ।
आवलियपमाणण अणतनाणीहि निद्दिट्ठा ॥१॥

यदि पुनर्मुहूर्ते आवलिका सङ्ख्यातुमिष्यते तत एतावेव
चतुश्चत्वारिंशच्छतानि त्रिसप्तत्यधिकानि भवन्तीति सप्तत्रिंशच्छ-
तानत्रिस-तत्यधिकगुण्यन्ते जाता एका कोटी सप्तषष्टि शतसह-
स्राणि सप्त सप्तति सहस्राणि सप्तशतानि अष्टापञ्चाशदभ्यधिकानि
१६७७७२१८ येऽपि चावलिकाया अंशाश्चतुर्विंशतिशतानि अष्टपञ्चा
शदधिकानि २४५८ तेऽपि मुहूर्तगतोच्छ्वासराशिना ३७७३ गुण्यन्ते
अयव छ्रस्य ते भगा इत्यावलिकानयनाथ तेनव भागो ह्रियते लब्धा
स्तावत्य एवावलिकाश्चतुर्विंशतिशतान्यष्टापञ्चाशानि २४५८ तानि
मूलराशौ प्रक्षिप्यन्ते जाता मूलराशिरेवा कोटि सप्तषष्टिलक्षा
सप्तसप्तति सहस्राणि द्व शते षोडशोत्तरे, एतावन्त्य आवलिका मुहूर्ते
भवन्ति यदि वा अन्तगताना क्षुल्लकभवग्रहणाना पञ्चषष्टि सहस्राणि
पञ्चशतानि षत्रिंशानि एकभवग्रहणप्रमाणन षटपञ्चाशेन शतद्वयेना
वलिकाना गुण्यन्ते तथापि तावत्य एवावलिका भवन्ति उक्तञ्च—

एगा कोडी सतट्ठि लक्ख सत्तत्तरी सहस्सा य ।
दो य सया सोलहिया आवलियाओ मुहुत्तमि ॥१॥

एव च यदुच्यते संखेज्जाओ आवलियाओ एगे उस्सासनीसासे
इत्यादि तदतीव समीचीनमिति कृत प्रसङ्गेन प्रकृत प्रस्तुम ।
सयोगिभवस्थकेवल्यनाहारकस्यान्तरमभिधित्सुराह— सजो ... आ-
वलिअणाहारयस्स ण ' इत्यादि प्रश्नसूत्र सुगमम्,

गौतम ! जघन्येनाप्यन्तमुहूर्तमुत्कर्षेणाप्यन्तमुहूर्त्तं समुद्घातप्रतिपत्तेरनन्तरमेवान्तमुहूर्तेन शैलेशीप्रतिपत्तिभावात् नवरं जघन्यपदादुत्कृष्टपदं विशेषाधिकमवसातव्यं अयोग्यवस्थायामयोगित्वात् अयोगिभवस्थकेवल्यनाहारकसूत्रं नास्त्यन्तरं अयोग्यवस्थायां सर्वस्याप्यनाहारकत्वात् । एवं सिद्धस्यापि साद्यपर्यवसितस्यानाहारकस्यान्तराभावो भावनीयः साम्प्रतमेतेषामाहारकानाहारकाणामल्पबहुत्वमाह— एएसि णं भंते !' इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमम् भगवानाह—गौतम! सर्वस्तोका अनाहारका, सिद्धविग्रहगत्यापन्नसमुद्घातगतसयोगिकेवल्ययोगिकेवलिनामेवानाहारकत्वात् तेभ्य आहारका असङ्ख्येयगुणाः अथ सिद्धेभ्योऽनन्तगुणा वनस्पतिजीवास्ते च प्रायः आहारका इत्यनन्तगुणाः कथं न भवति ? उच्यते, इह प्रतिनिगोदमसङ्ख्येयो भागः प्रतिसमयं सदा विग्रहगत्यापन्नो लभ्यते, अनाहारकाः —

> *विग्गहगइमावन्ना केवलिणो समुहया अजोगी य ।
> सिद्धा य अणाहारा सेसा आहारगा जीवा ॥१॥

इतिवचनात् ततोऽसङ्ख्येयगुणा एवाहारका घटन्ते नानन्तगुणा इति । प्रकारान्तरेण भूयो द्वैविध्यमाह ।

हिन्दी-भावार्थ

अथवा सब जीव दो प्रकार से कहे गए हैं । जैसेकि—आहारक और अनाहारक ।

अनगार गौतम बोले—भदन्त ! जीव आहारक कब तक रह सकते हैं ?

भगवान महावीर ने कहा—गौतम ! आहारक जीव दो प्रकार के होते हैं । जैसेकि—छद्मस्थ—आहारक, और केवलिआहारक ।

अनगार गौतम बोले—भदन्त ! छद्मस्थ जीव आहारक

---

* विग्रहगत्यापन्ना केवलिनः समुद्धता अयोगिनश्च ।
सिद्धाश्चानाहाराः शेषा आहारका जीवाः ॥१॥

कब तक रहता है ?

भगवान महावीर ने कहा—गौतम ! जघन्य क्षुल्लक-भवग्रहण में दो समय कम काल तक। क्षुल्लक भवग्रहण का अर्थ होता है—२५६ आवलिका का एक भव करना। उत्कृष्ट काल यावत् असंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल तक। क्षेत्र से अंगुल के असंख्यातवें भाग तक। अर्थात् अंगुल के असंख्यातवें भाग में जितने आकाश प्रदेश हैं उनमें से एक एक आकाश प्रदेश को एक एक समय में निकालने पर जितने समय में सारे आकाश प्रदेश निकलें उतने उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल तक छद्मस्थ जीव आहारक रहते हैं।

अनगार गौतम बोले—भदन्त ! केवली भगवान आहारक कब तक रहते हैं ?

भगवान महावीर ने कहा—गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट कुछ कम करोड़ पूर्व काल तक।

अनगार गौतम बोले—भदन्त ! जीव अनाहारक कब तक रहते हैं ?

भगवान महावीर ने कहा—गौतम ! अनाहारक जीव दो प्रकार के होते हैं। जैसेकि—छद्मस्थ अनाहारक और केवली अनाहारक। छद्मस्थ अनाहारक जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट दो समय तक। केवली अनाहारक दो प्रकार के कहे गये हैं। जैसेकि सिद्ध केवली अनाहारक और भवस्थ केवली अनाहारक।

अनगार गौतम बोले—भदन्त ! सिद्धकेवली जीव अनाहारक कब तक रहते हैं ?

भगवान महावीर ने कहा— [illegible] क।

अनगार गौतम बोले—भदन्त ! भवस्थ केवली जीव अनाहारक कितने प्रकार के होते है ?

भगवान महावीर ने कहा—गौतम ! भवस्थकेवली अनाहारक जीव दो प्रकार के होते हैं। जैसे-सयोगी भवस्थ केवली अनाहारक और अयोगी भवस्थ केवली अनाहारक।

अनगार गौतम बोले—भदन्त ! सयोगी भवस्थ केवली जीव अनाहारक कब तक रहते है ?

भगवान महावीर ने कहा—गौतम ! सयोगी भवस्थ केवली जीव जघन्य और उत्कृष्ट तीन समय तक अनाहारक रहते हैं। और अयोगीभवस्थ केवली जीव जघन्य अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट भी अन्तमुहूर्त अनाहारक रहते हैं।

अनगार गौतम बोले—भदन्त ! छद्मस्थ आहारक जीव का अन्तरकाल कितना होता है ?

भगवान महावीर ने कहा—गौतम ! जघन्य एक समय और उत्कृष्ट दो समय तक। केवली आहारक जीव का अन्तरकाल जघन्य और उत्कृष्ट तीन समय तक होता है। छद्मस्थ अनाहारक जीव का अन्तरकाल जघन्य दो समय कम क्षुल्लक-भवग्रहण तक और उत्कृष्ट असंख्यात काल तक होता है, यावत क्षेत्र की अपेक्षा अंगुल का असंख्यातवा भाग। सिद्ध केवली अनाहारक जीव सादि अनन्त होते है इसलिए उनका अन्तर नही होता है। सयोगीभवस्थ केवली अनाहारक जीव का अन्तर जघन्य अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट भी अन्तमुहूर्त ही होता है। अयोगी भवस्थ केवली अनाहारक जीव का अन्तर नही होता है।

अनागार गौतम बोले—भदन्त ! इन आहारक और अनाहारक जीवों में कौन अल्प हैं और कौन अधिक हैं ?

भगवान महावीर ने कहा—गौतम ! सब मे कम अनाहारक जीव होते है और आहारक जीव इन से असख्यात गुणा अधिक होते है।

मूल पाठ

*अहवा दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तजहा— सभासगा अभासगा य।

सभासए ण भते ! सभासए त्ति कालओ केवचिर होति ?

गोयमा ! जहण्णेण एक्क समय उक्कोसेण अतोमुहुत्त।

---

* अथवा द्विविधा सर्वजीवा प्रज्ञप्ता । तद्यथा—सभाषका अभाषकाश्च । सभाषका भदन्त ! सभाषक इति कालत कियच्चिर भवति ? गौतम ! जघन्येन एक समयम उत्कर्षेण अन्तमुहूर्तम । अभाषको भन्त ! ० ? गौतम ! अभाषका द्विविध प्रज्ञप्त । सान्त्विको वा अपर्यसित सान्त्विको वा सपर्यवसित । तत्र य स सादिक सपर्यवसित स जघन्येन अन्तमुहूर्तम् उत्कर्षेण अनन्त कालम अनन्ता उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यो वनस्पतिकाल । भाषकस्य भदन्त ! कियत्का-लमन्तर भवति ? जघन्येन अन्तमुहूर्तम् उत्कर्षेण अनन्त काल वनस्पति काल । अभाषकस्य सादिकस्य अपर्यवसितस्य नास्त्यन्तरम् । सान्त्विक सपर्यवसितस्य जघन्येन एक समयम् उत्कर्षेण अन्तमुहूर्तम् । अल्पबहुत्वम्-सर्वस्तोका भाष०। अभाषका अनन्तगणा ।

अथवा त्रिविधा सर्वजीवा । सशरीरिणश्च अशरीरिणश्च । अश-रीरिणो यथा सिद्धा स्तोका अशरीरिण । सशरीरिण अनन्तगुणा ।

अनगार गौतम बोले—भदन्त ! भवस्थ केवली जीव अनाहारक कितने प्रकार के होते है ?

भगवान महावीर ने कहा—गौतम ! भवस्थकेवली अनाहारक जीव दो प्रकार के होते है। जैसेकि सयोगी भवस्थ केवली अनाहारक और अयोगी भवस्थ केवली अनाहारक।

अनगार गौतम बोले—भदन्त ! सयोगी भवस्थ केवली जीव अनाहारक कब तक रहते है ?

भगवान महावीर ने कहा—गौतम ! सयोगी भवस्थ केवली जीव जघन्य और उत्कृष्ट तीन समय तक अनाहारक रहते हैं। और अयोगीभवस्थ केवली जीव जघन्य अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट भी अन्तमुहूर्त अनाहारक रहते है।

अनगार गौतम बोले—भदन्त ! छद्मस्थ आहारक जीव का अन्तरकाल कितना होता है ?

भगवान महावीर ने कहा—गौतम ! जघन्य एक समय और उत्कृष्ट दो समय तक। केवली आहारक जीव का अन्तरकाल जघन्य और उत्कृष्ट तीन समय तक होता है। छद्मस्थ अनाहारक जीव का अन्तरकाल जघन्य दो समय कम क्षुल्लक भवग्रहण तक और उत्कृष्ट असख्यात काल तक होता है, यावत क्षेत्र की अपेक्षा अंगुल का असख्यातवा भाग। सिद्ध-केवली अनाहारक जीव सादि अनन्त होते हैं इसलिए उनका अन्तर नही होता है। सयोगीभवस्थ केवली अनाहारक जीव का अन्तर जघन्य अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट भी अन्तमुहूर्त ही होता है। अयोगी भवस्थ केवली अनाहारक जीव का अन्तर नही होता है।

अनागार गौतम बोले—भदन्त ! इन आहारक और अनाहारक जीवो में कौन अल्प हैं और कौन अधिक हैं ?

भगवान महावीर ने कहा—गौतम ! सब से कम अनाहारक जीव हैं। है और आहारक जीव इन से असंख्यात गुणा अधिक होते हैं।

मूल पाठ

*अहवा दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तंजहा—सभासगा अभासगा य।

सभासए णं भंते ! सभासए त्ति कालओ केवचिरं होति ?

गोयमा ! जहण्णेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं।

---

* अथवा द्विविधा सर्वजीवा प्रज्ञप्ता । तद्यथा—सभाषका अभाषकाश्च । सभाषको भदन्त ! सभाषक इति कालतः कियच्चिरं भवति ? गौतम ! जघन्येन एकं समयम् उत्कर्षेण अन्तर्मुहूर्तम्। अभाषको भदन्त ! ० ? गौतम ! अभाषको द्विविधः प्रज्ञप्तः । सादिको वा अपर्यवसितः सादिको वा सपर्यवसितः । तत्र य स सादिकः सपर्यवसितः, स जघन्येन अन्तर्मुहूर्तम् उत्कर्षेण अनन्तं कालम् अनन्ता उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यो वनस्पतिकालः । भाषकस्य भदन्त ! कियत्‌का-लमन्तरं भवति ? जघन्येन अन्तर्मुहूर्तम् उत्कर्षेण अनन्तं कालं वनस्पतिकालः । अभाषकस्य सादिकस्य अपर्यवसितस्य नास्त्यन्तरम्। सादिक सपर्यवसितस्य जघन्येन एकं समयम् उत्कर्षेण अन्तर्मुहूर्तम् । अल्पबहुत्वम् सर्वस्तोका भाष०। अभाषका अनन्तगुणाः ।

अथवा द्विविधा सर्वजीवाः । सशरीरिणश्च अशरीरिणश्च । अशरीरिणो यथा सिद्धाः स्तोका अशरीरिणः । सशरीरिणः अनन्तगुणाः

अभामए ण भन्ते ! ०? गोयमा ! , अभासए दुविहे पण्णत्ते—सादीए वा अपज्जवसिए, सातीए वा सपज्जवसिए, तत्थ णं जे स सादीए सपज्जवसिए से जह० अतो० उक्को० अणत कालं अणंता उस्सप्पिणी-ओसप्पिणीओ वणस्सतिकालो।

भासगस्स णं भन्ते ! केवतिकालं अंतरं होति ?

जह० अतो० उक्को० अतो० अणंत कालं वणस्सतिकालो। अभासग० सातीयस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं, सातीयसपज्जवसियस्स जहण्णेण एक्कं समयं उक्को० अतो०। अप्पाबहु० सव्वत्थोवा भासगा, अभासगा अणंतगुणा।

अहवा दुविहा सव्वजीवा, ससरीरी य असरीरी य। असरीरी जहा सिद्धा थोवा असरीरी, ससरीरी अणंतगुणा।

संस्कृत—व्याख्या

अहव' त्यादि अथवा द्विविधा सर्वजीवा प्रज्ञप्तास्तद्यथा भाषकाश्च अभाषकाश्च भाषमाणा भाषका इतरेऽभाषका। सम्प्रति कायस्थिति माह— सभासए णं भंते ! —इत्यादि प्रश्नसूत्र सुगमम्।

भगवानाह—गौतम ! जघन्येनैकं समयं भाषाद्रव्यग्रहणसमय एव मरणतोऽन्यतो वा कुतश्चित्कारणात्तद्व्यापारस्याप्युपरमात् उत्कर्षेणान्तर्मुहूर्त्त तावन्तं कालं निरन्तरं भाषाद्रव्यग्रहणनिसर्गसम्भवात्। तत ऊर्द्ध्वं जीवस्वाभाव्यान्नियमत एवोपरमति। अभाषकप्रश्नसूत्रं सुगमम् भगवानाह—गौतम ! अभाषका द्विविधा प्रज्ञप्तास्तद्यथा—सादिका वा

प्रपयवसित सिद्ध सान्तिको वा सपयर्वासत स च पृथिव्यादि तत्र योऽसौ सादि सपयवसित स जघन्येनान्तमुहूत्त, भाषणादुपरम्यान्तमुहूर्तेन कस्यापि भयोऽपि भाषणप्रवत्त पथिव्यादिष्वस्य वा जघयत एवा व मात्रकालत्वात् उत्कषतो वनस्पतिकाल स चानन्ता उत्सर्पिण्यव र्पिण्य कालत, क्षत्रतोऽनन्ता लोका असङ्ख्येया पुद्गलपरावर्त्ता ते च पुद्गलपरावर्त्ता आवलिकाया असङ्ख्येया भाग एतावन्त काल वनस्प तिष्वभाषकत्वात् । साम्प्रतमन्तर चिचिन्तयिषुराह— भासगस्स ण भन ।' इत्यादि प्रश्नसूत्र सुगमम् भगवानाह—गौतम ! जघन्येनान्त-र्मुहूर्त्तमुत्कषतो वनस्पतिकाल अभाषककालस्य भाषकान्तरत्वात् । अभाषकसूत्र साद्यपर्यवसितस्य नास्त्यन्तरमपर्यवसितत्वात्, सादिसपयव सितस्य जघन्येनक समयमुत्कर्षतोऽन्तमुहूर्त्त, भाषककालस्याभाषकान्तर-त्वात् तस्य च जघन्यन उत्कषतश्चतावन्मात्रत्वात् अल्पबहुत्वसूत्र प्रतीतम् । अहवा त्याति सशरीरा—असिद्धा अशरीरा—सिद्धा तत सर्वाण्यपि सशरीराशरीरसूत्राणि सिद्धासिद्धसूत्राणीव भावनीयानि ।

हिन्दी-भावार्थ

अथवा सवजीव दो प्रकार के होते हैं । जैसेकि-सभापक और अभापक ।

अनगार गौतम बोले—भदन्त ! सभापक जीव सभापकत्व रूप से कब तक रहते हैं ?

भगवान महावीर ने कहा—गौतम ! जघन्य एक समय उत्कृष्ट अन्तमुहूर्त तक ।

अनगार गौतम बोले—भदन्त ! अभापक जीव अभाषकत्व रूप से कब तक रहते हैं ?

भगवान महावीर ने कहा—गौतम ! ... प्रकार के कहे गये हैं—अनादि अनन्त और

जो सादि-सान्त जीव हैं उनका अवस्थितिकाल जघन्य अन्तमुहूर्त उत्कृष्ट अनन्तकाल तक। अर्थात् अनन्त उत्सर्पिणि अवसर्पिणियों तक। जिस प्रकार वनस्पतिकाल अनन्त होता है वैसे ही इन जीवों का भी अवस्थितिकाल अनन्त समझना चाहिए।

अनगार गौतम बोले—भदन्त! भाषक जीवों का अन्तर कितने काल का होता है?

भगवान महावीर ने कहा—गौतम! जघन्य अन्तमुहूर्त उत्कृष्ट वनस्पतिकाल अर्थात् अनन्तकाल तक होता है। अभाषक सादि अनन्त जीवों का अन्तरकाल नहीं होता है। सादि-सान्त जीवों का अन्तरकाल जघन्य एक समय उत्कृष्ट अन्तमुहूर्त होता है। इन का अल्पबहुत्व इस प्रकार समझना चाहिए—

सब से कम भाषक जीव होते हैं। अभाषक जीव इन से अनन्त गुणा अधिक होते हैं।

अथवा सब जीव दो प्रकार के कहे गये हैं। जैसे कि—सशरीरी और अशरीरी। अशरीरी जीवों को सिद्धों के समान समझना चाहिए। अशरीरी कम हैं, और सशरीरी इन से अनन्तगुणा अधिक होते हैं।

मूल पाठ

अहवा दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता तंजहा—चरिमा चेव, अचरिमा चेव।

अथवा द्विविधाः सर्वजीवाः प्रज्ञप्ताः। तद्यथा—चरमाश्चैव अचरमाश्चैव। चरमो भदन्त! चरम इति कालतः कियच्चिरं भवति?

सूत्राणां विषयविभाग' इति । सम्प्रत्युपसंहारमाह— सत्त दुविहा' ते एते त्रिविधा सर्वजीवा अत्र कयचिद्विविषवक्तव्यतामग्रहणिगाथा—

सिद्धसइंदियकाए जोए वेए कसायलेसा य ।
नाणुवग्रागाहारा भाससरीरी य चरमा य ॥१॥
(वत्तिकारो मलयगिरि)

हिन्दी-भावार्थ

अथवा सर्वजीव दो प्रकार के कहे गए है। जैसेकि—चरम और अचरम।

अनगार गौतम बोले—भदन्त ! चरम जीव चरमस्वरूप से कब तक रहते हैं ?

भगवान महावीर ने कहा—गौतम ! चरम जीव अनादि-सान्त होते हैं। अचरम जीव दो प्रकार के होते है जैसेकि—अनादि अनन्त और सादि-अनन्त। दोनों प्रकार के जीवों का अन्तरकाल नहीं होता है। इन जीवों का अल्पबहुत्व इस प्रकार है—

सबसे कम अचरम जीव होते हैं और चरम जीव इन से अनन्त गुणा अधिक माने गए है।

इस प्रकार सर्वजीवों की व्याख्या करने वाला प्रकरण समाप्त होता है।

काइ स्वभाव अवश्य हाता है और उस मे वह अवस्थित भी रहता है। वदिक दशनसम्मत परमात्मा को ही लें लें, वदिक दशन के विश्वासानुसार वह जगत का निमाण करता है। तो 'जगत का निमाण करना परमात्मा का स्वभाव बन जाता है। वदिक दशन के अनुसार जगत का निर्माण परमात्मा द्वारा ही होता है इस लिए अपने स्वभाव म स्थिर होने स उस जगत्कर्ता परमात्मा को भी बद्ध या परतन्त्र मानना पडेगा। पर जगतकर्ता परमात्मा की बद्धता वदिक दशन स्वय स्वीकार नहीं करता है। वस्तुस्थिति भी यही है। स्वभाव स्थिर किसी एक तत्व पर बद्ध या परतन्त्र शब्द का प्रयोग नही हुआ करता। अत सदा के लिए मुक्ति म विराजमान रहने के कारण जनदशन के परमात्मा को भी बद्ध या परतन्त्र नहीं कहना चाहिए और नाही एसा समझना चाहिए।

इसके अलावा वदिक ग्रथो म भी परमात्मा की अनन्तता को प्रकारान्तर म स्वीकार किया गया है। यजुर्वेद म एसे अनेकों मन्त्र उपलब्ध होते है जो स्पष्ट रूप से परमात्मा की अनन्तता को अभिव्यक्त कर रहे हैं। पाठकों की जानकारी क लिए हम यजुर्वेद क दो मन्त्रो को यहा उदधृत करते हैं। व मन्त्र य है—

*एतावानस्य महिमातो ज्यायाश्च पूरुष ।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृत दिवि ॥
—यजुर्वेद अ० ३१, मन्त्र ३

* वदिक यन्त्रालय अजमेर से मुद्रित तृतीयावृत्ति विक्रम सम्वत् १९६९ पृष्ठ १०४२

इस का भावार्थ करते हुए श्री दयानन्द सरस्वती लिखते हैं कि यह सब सूर्य चन्द्र आदि लोक-लोकान्तर चराचर जितना जगत है, वह सब चित्र विचित्र रचना के अनुमान से परमेश्वर के महत्त्व को सिद्ध कर उत्पत्ति स्थिति और प्रलय रूप से तीनों काल में घटने बढ़ने से भी परमेश्वर के एक-एक चतुर्थांश में ही रहता है किन्तु इस ईश्वर के चौथे अंश को भी अवधि को नहीं पाता और इस ईश्वर के सामर्थ्य के तीन अंश अपने अविनाशी मोक्षस्वरूप में सदैव रहते हैं। इस कथन से उस ईश्वर का अनन्तपन नहीं बिगड़ता किन्तु जगत की अपेक्षा उस का महत्त्व और जगत का न्यूनत्व जाना जाता है।

त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः ।
ततो विष्वङ् व्यक्रामत्साशनानशने अभि ॥
— यजुर्वेद अ० ३१ मन्त्र ४

श्री दयानन्द सरस्वती ने इस मन्त्र का भावार्थ इस प्रकार किया है—

यह पूर्वोक्त परमेश्वर कार्यजगत् से पृथक् तीन अंश से प्रकाशित हुआ एक अंश अपने सामर्थ्य से सब जगत को वार बार उत्पन्न करता है पीछे उस चराचर जगत में व्याप्त हो कर स्थित है। (पृष्ठ १०८३)

यजुर्वेद के इन मन्त्रों में कहा गया है कि परमात्मा के तीन अंश अपने अविनाशी मोक्षस्वरूप में सदैव रहते हैं। यजुर्वेद का यह वर्णन जैनदर्शनसम्मत परमात्मा की अनन्तता के साथ स्पष्ट रूप से मेल खा रहा है। यह सत्य है कि जैनदर्शन यजुर्वेद की भांति परमात्मा के चार अंश नहीं मानता है नाही वह परमात्मा का जगत्कर्तृत्व स्वीकार

काई स्वभाव अवश्य होता है और उस में वह अवस्थित भी रहता है। वदिकदशनसम्मत परमात्मा को ही लें ल वदिकदशन के विश्वामानुसार वह जगत का निमाण करता है। तो 'जगत का निमाण करना परमात्मा का स्वभाव बन जाता है। वदिकदशन क अनुमार जगत का निर्माण परमात्मा द्वारा हा हाता है इस लिए अपने स्वभाव म स्थिर हाने से उस जगत्कर्ता परमात्मा को भी बद्ध या परतन्त्र मानना पडेगा। पर जगतकर्ता परमात्मा की बद्धता वदिकदशन स्वय स्वीकार नही करता है। वस्तुस्थिति भी यहा है। स्वभाव स्थिर किसा एक तत्व पर बद्ध या परतन्त्र शब्द का प्रयोग नही हुआ करता। अत सत्ता क लिए मुक्ति म विराजमान रहने के कारण जनदशन क परमात्मा को भी बद्ध या परतन्त्र नही कहना चाहिए और नाही ऐसा समझना चाहिए।

इसक अलावा वदिक ग्रथा म भी परमात्मा की अनन्तता को प्रकारान्तर मे स्वाकार किया गया है। यजुर्वेद म ऐसे अनेक मत्र उपलब्ध हात हैं जा स्पष्ट रूप स परमात्मा की अनन्तता को अभिव्यक्त कर रहे हैं। पाठका की जानकारी क लिए हम यजुर्वेद क दा मन्त्रा को यहा उद्धत करते है। वे मत्र य हैं–

> *एतावानस्य महिमातो ज्यायाश्च पूरुष ।
> पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृत दिवि ।।
> —यजुर्वेद अ० ३१,मत्र ३

* वदिक यत्रालय अजमेर स मुद्रित तृतीयावृत्ति विक्रम सम्वत् १९९९ पृष्ठ १०४२

इस का भावार्थ करते हुए श्री दयानन्द सरस्वती लिखते है कि यह सब सूर्य चन्द्र आदि लोक-लोकान्तर चराचर जितना जगत है, वह सब चित्र विचित्र रचना के अनुमान से परमेश्वर के महत्त्व को सिद्ध कर उत्पत्ति स्थिति और प्रलय रूप से तीनों काल में घटने बढ़ने से भी परमेश्वर के एक एक चतुर्थांश में ही रहता है किन्तु इस ईश्वर के चौथे अंश का भी अवधि को नहीं पाता और इस ईश्वर के सामर्थ्य के तीन अंश अपने अविनाशी मोक्षस्वरूप में सदैव रहते हैं। इस कथन से उस ईश्वर का अनन्तपन नहीं बिगड़ता किन्तु जगत का अपेक्षा उस का महत्त्व और जगत का न्यूनत्व जाना जाता है।

त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुष पादोऽस्येहा भवत्पुन ।

ततो विष्वङ् व्यक्रामत्साशनानशने अभि ॥

— यजुर्वेद, अ० ३१ मंत्र ४

श्री दयानन्द सरस्वती ने इस मंत्र का भावार्थ इस प्रकार किया है—

यह पूर्वोक्त परमेश्वर कार्यजगत् से पृथक् तीन अंश में प्रकाशित हुआ एक अंश अपने सामर्थ्य से सब जगत को बार बार उत्पन्न करता है पीछे उस चराचर जगत में व्याप्त हो कर स्थित है। (पृष्ठ १०४३)

यजुर्वेद के इन मंत्रों में कहा गया है कि परमात्मा के तीन अंश अपने अविनाशी मोक्षस्वरूप में सदैव रहते है। यजुर्वेद का यह वर्णन जैनदर्शनसम्मत परमात्मा की अनन्तता के साथ स्पष्ट रूप से मेल खा रहा है। यह सत्य है कि जैनदर्शन यजुर्वेद की भांति परमात्मा के चार अंश नहीं मानता है और नाही वह परमात्मा का जगत्कर्तृत्व स्वीकार करता है।

किन्तु यजुर्वेद के मन्त्रों द्वारा प्रस्तुत में हम इतना ही व्यक्त करना चाहते हैं कि यजुर्वेद में भी परमात्मा को अनन्त माना गया है और यजुर्वेदसम्मत परमात्मा के तीन अंश अविनाशी मोक्ष में सदा रहते हैं वे कभी वहां से च्युत नहीं हो पाते। जब यजुर्वेदसम्मत परमात्मा की अनन्तता उसे बद्ध नहीं होने देती, उसे स्वतंत्र बनाए रखता है तो जैनदर्शन सम्मत परमात्मा की अनन्तता उसे बद्ध या परतन्त्र या कर्मों का दास बना सकती है ? उत्तर स्पष्ट है—कभी नहीं।

गीता में अकर्तृत्ववाद—

जैनदर्शन परमात्मा को जगत का निर्माता, भाग्यविधाता, तथा कर्मफलप्रदाता स्वीकार नहीं करता है। जैनदर्शन की यह मान्यता सर्वथा युक्तियुक्त और तर्कसंगत है। इस की छाया हम भगवद्गीता में भी मिलती है। गीता के पांचवें अध्याय का पांचवां और छठा श्लोक देखिए—

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः ।

न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते ॥

अर्थात्—ईश्वर जगत का निर्माता नहीं है जीवों के कर्मों की रचना नहीं करता है और नाहीं वह कर्मफल का प्रदाता है। प्रकृति के स्वभाव में ही यह सब बातें हो रही हैं।

नादत्ते कस्यचित्पापं, न चैव सुकृतं विभुः ।

अज्ञानेनावृतं ज्ञानं, तेन मुह्यन्ति जन्तवः ॥

अर्थात्—ईश्वर किसी को पाप और पुण्य नहीं लगाता है, ज्ञान अज्ञान से आवृत हो रहा है इसी कारण से जीव मोह को प्राप्त हो रहे हैं।

———